

ISSN 2394-1723

वर्ष 26 अंक 298 अगस्त 2020

वार्षि

भारतीय भाषा परिषद की पत्रिका

## कोरोना महामारी : एक सामाजिक किताब

मेधा पाटकर वैभव सिंह हितेंद्र पटेल

गैंड्रियल गौर्खा मार्केज दिनेश कर्नाटक गौवर्धन यादव की कहानियाँ

कविताओं के नए संसार के साथ



संरक्षक  
इंद्रनाथ चौधुरी  
स्वप्न चक्रवर्ती

संपादक  
शंभुनाथ

प्रबंध संपादक  
प्रदीप चोपड़ा

प्रकाशक  
डॉ. कुसुम खेमानी

संपादन सहयोग  
अंक सज्जा  
सुशील कान्ति

संपादकीय विभाग  
36 ए, शेक्सपियर सरणी  
कोलकाता-700017  
[vagarth.hindi@gmail.com](mailto:vagarth.hindi@gmail.com)  
7449503734

दिन 12 बजे से संध्या 6 बजे तक

आवरण  
तारक नाथ राय

# वार्षि

भारतीय भाषा परिषद की पत्रिका  
वर्ष 26, अंक 298, अगस्त 2020

यह हमारा विश्व नहीं है  
संपादकीय 5



इस अंक में

## बहस

कोरोना महामारी : एक सामाजिक किताब  
मेधा पाटकर  
वैभव सिंह  
हितेंद्र पटेल 32



कहानियाँ  
खोज : दिनेश कर्नाटक 62  
घर वापसी : गोवर्धन यादव 75

## कविताएँ

जाविर हुसेन/सुभाष  
राय/अनुपम/रंजना  
अरगड़े/अनिरुद्ध  
सिन्हा/अहमद नियाज  
रज्जाकी/वासुदेव नाडिंग 10



## आलेख

महात्मा गांधी और  
आंबेडकर :  
सूर्यनारायण रणसुभे 96



**विश्वदृष्टि**

**अमेरिकी कविताएँ :**

**नथाली हैंडेल**

(अनुवाद : बाल मुकुंद नंदवाना) 29

**प्रेम पार की मृत्यु (कहानी) :**

**ग्रैब्रियल गार्षा मार्केस**

(अनुवाद : विजय शर्मा) 86



**समीक्षा संवाद**

**सांस्कृतिक आलोचना के**

**विविध आयाम :** (कृष्णदत्त

पालीवाल, विनोद शाही और राजकुमार  
के साक्षात्कार के साथ उनकी पुस्तकों

पर चर्चा) : सरोज सिंह 111



**विविध 122**

**बतरस**

**मारवाड़ी राजबाड़ी :**

**कुसुम खेमानी 123**



**सदस्यता संपर्क**

**साधारण डाक खर्च सहित वार्षिक सदस्यता : 300 रुपए**

**तीन साल : 850 रुपए**

**आजीवन : 3000 रुपए : विदेश : वार्षिक : 40 डॉलर**

**भारतीय भाषा परिषद के नाम से चेक या ड्राफ्ट भेजें**

एजेंसियों और सदस्यों द्वारा चेक से भुगतान bharatiya bhasha parishad के नाम

या नेपट द्वारा : कोटक महिंद्रा बैंक, शाखा : लाउडन स्ट्रीट,

A/c no- 8111974982, IFSC code-KKBK0006590 पर उपर्युक्त नाम से किए जा सकते हैं।

भुगतान के बाद एसएमएस कर दें—मो.9163372683 : भीनाक्षी दत्ता (सदस्यता और बिक्री)

## यह हमारा विश्व नहीं है

क्या कोरोना महामारी एक ग्लोबल पाठ है जिसने विज्ञान, राजनीति और संस्कृति की सच्चाइयों को उद्घाटित कर दिया है?

बुद्ध के समय में क्रूरता थी तो करुणा कम नहीं थी। अहिंसा की धारणा तब आई, जब हिंसा बढ़ी-चढ़ी थी। शत्रुताएं फैली थीं, इसलिए मैत्री का संदेश गूंजा। कहा जा सकता है कि हिंसा प्रकृति है, अहिंसा सभ्यता है। कलह प्रकृति है, मैत्री सभ्यता है। आधुनिक सभ्यता आज कोरोना महामारी के मोड़ पर खड़ी है। देखने की जरूरत है कि हर तरफ क्या है- क्रूरता

**बड़े देशों ने अपने देश को ‘बाहरी’ से खाली कराने में ज्यादा दिलचस्पी ली।**

**विजातीय से भय बढ़ा।  
कोरोना के टीका और दवाओं के अनुसंधान में भी वैशिक तालमेल की जगह व्यापारिक होड़ देखने को मिली।**

अहिंसा, करुणा और मैत्री से लबरेज। क्या यह हमारे आस-पास का परिदृश्य है? हम देख सकते हैं कि टेक्नोलॉजी आगे बढ़ी हुई है लेकिन मानवता, बुद्धिपरकता और विश्वबोध का दिवाला पिट गया है। इसे कुछ उदाहरणों से जाना जा सकता है।

पूरा विश्व जब एक ही तरह के संकट से गुजर रहा है, विश्व के राष्ट्राध्यक्षों ने कोरोना वायरस का सामना करने के सवाल पर और दुनिया के अभावग्रस्त बेकार लोगों के पास खड़ा होने

के लिए एक बार भी उस तरह शिखरवार्ता नहीं की, जिस तरह वे उदारीकरण और व्यापारिक लाभों के लिए बार-बार शान-शौकत के साथ बैठक करते थे। बल्कि वैश्वीकरण की धज्जियां उड़ाते हुए बड़े देशों ने अपने देश को ‘बाहरी’ से खाली कराने में ज्यादा दिलचस्पी ली। विजातीय से भय बढ़ा। कोरोना के टीका और दवाओं के अनुसंधान में वैश्विक तालमेल की जगह व्यापारिक होड़ देखने को मिली। कई कंपनियों की यह चिंता है कि महामारी को मुनाफे का सिक्का कैसे बनाया जाए। यदि जी-20 के राष्ट्राध्यक्ष किसी दिन ऑनलाइन शिखरवार्ता पर बैठ जाते तो वैज्ञानिक खोजों में तालमेल, चिंताओं में साझेदारी और विश्वमानवता का एक

बड़ा संदेश बनता। संसार में मैत्री और करुणा की भाषा फैलती।

घटित यह हुआ कि ‘सोशल डिस्टेंस’ नंगे रूप में आया। देशों में राष्ट्रवादी दूरियां बढ़ीं। यूरोपीय देशों का राष्ट्रीय भेदभाव उजागर हुआ। अमेरिका में रंगभेद का नजारा

देखने को मिला, काले लोग सड़क पर उतर गए। महामारी के दौर में भी एशिया अशांत हुआ। लदाख की सरहद पर चीन ने विस्तारवाद दिखाया। आसमान में युद्धक विमान गरजने लगे। राजनीतिक उठापटक में भी कहीं कमी नहीं आई।

महामारी के रोज भयावह हो रहे रूप को देख कर इन्सान और इन्सान के बीच धर्म, जाति और राष्ट्र की खाइयां निरर्थक हो जानी चाहिए थीं। इसका उल्टा हुआ। एक-दूसरे के प्रति संदेह बढ़ा। दोषारोपण बढ़ गया। एक राज्य में दूसरे राज्य के नागरिकों को शत्रु माना जाने लगा। दीवारें उठने लगीं, कोरोना के संदेह में कभी-कभी अकल्पनीय हिंसा हुई। अपने ही देश में लोग प्रवासी मजदूर कहे जाने लगे। इसके अलावा, सरकारी अस्पताल ही आम लोगों के संकट मोचक बने, चाहे वे जितनी खराब हालत में हों। निजी अस्पताल



और नर्सिंग होम लूट की जगहें बन गए। कई व्यक्ति राहत सामग्री की लूट से भी बाज नहीं आए। महामारी का जवाब महामानवता से दिया जाना चाहिए जो अभी एक स्वप्न है!

कोरोना का सामना करने के मामले में असमानता भी उजागर हुई है। एक बार फिर सामाजिक विभाजन दिखा। हालांकि ऐसे स्वास्थ्य कर्मियों, सामाजिक संगठनों और प्रबुद्ध नागरिकों की कमी नहीं रही है जो अपनी जान जोखिम में डालकर संक्रमित मरीजों की सेवा करते रहे हैं। वे जरूरतमंदों



तक जरूरत के सामान पहुंचाते रहे हैं। हर युग में ऐसे व्यक्ति रहे हैं। सावित्री बाई फुले की जान 1897 में महामारी के शिकार मरीजों की अपने विलनिक में सेवा करते हुए गई थी। उन्होंने नहीं देखा था कि प्लेग का शिकार ब्राह्मण है या दलित। रेणु के 'मैला आंचल' के प्रशांत जैसे डाक्टर

अब भी समाज में हैं। वे गांवों और छोटे शहरों में सेवा भाव से काम कर रहे हैं और उन डॉक्टरों से भिन्न हैं जो वस्तुतः मुहल्लों से भाग खड़े

हुए या महामारी को व्यापार बना लिया।

सभी की आंखों में प्रतीक्षा है, वैक्सिन कब आएगा? भारत के लोग मान कर चलते हैं कि उनके देश में इसका आविष्कार नहीं होगा, हम ऐसे

मामलों में गर्व करना नहीं चाहते। यह आएगा तो पश्चिमी देशों से ही आएगा, उन्हीं से आशा है!

**बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने विज्ञान को बंधुआ मजदूर बना लिया है। शक्ति प्रदर्शन के लिए मंगल ग्रह का रहस्य जानने के लिए न जाने कितने यान भेजे गए। लेकिन कोविद-19 के वायरस का रहस्य जानने की शक्ति समय पर कहीं नहीं दिखी।**

यदि देखा जाए, तो जिस तरह वैज्ञानिक दृष्टि और मानवतावादी राष्ट्रीयता के ह्लास को लेकर कोई चिंता नहीं है, उसी तरह प्रकृति से औद्योगिक समाज के संबंध को बदलने को लेकर भी फिलहाल कोई फिक्र नहीं है। हम प्रकृति पर विजय के दंभ से भरे हुए हैं और उपभोक्ता संस्कृति में डूबे हुए हैं। कोरोना वायरस ने बता दिया कि प्रकृति पलट कर वार करती है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने विज्ञान को बंधुआ मजदूर बना



लिया। शक्ति प्रदर्शन के उद्देश्य से मंगल ग्रह पर न जाने कितने यान भेजे गए। लेकिन कोविद-19 के वायरस का रहस्य जानने की शक्ति समय पर कहीं भी नहीं दिखी। क्योंकि विज्ञान को अशक्त करके रख दिया गया है, टेक्नोलॉजी ही सब कुछ

हो गई है। विज्ञान को व्यापारिक मुनाफा और टेक्नोलॉजी की हड्डों में सीमित रखना आत्मघात है। दुनिया में विज्ञान की आजादी जखरी है, वैज्ञानिकों को फिर से बड़े अवसर देना आज का सबक है।

इस बुरे समय का यह पहलू कम दर्दनाक नहीं है कि कोरोना महामारी ने पहले से बड़े पैमाने पर शुरू हो चुकी आर्थिक मंदी को न सिर्फ एक तर्क दे दिया है बल्कि उसे अति व्यापक भी बना दिया है। लगभग एक तिहाई लोग अपने रोजी-रोजगार से हाथ धो बैठे हैं। छोटे और मझोले व्यापारी तबाह हैं।

आर्थिक मंदी के दौर में लिखे गए प्रेमचंद के ‘गोदान’ (1936) का एक दृश्य है, खन्ना की मिल में हड़ताल होने पर पहले से आधी मजदूरी पर काम करने के लिए सैकड़ों बेकार

लोग तैयार हो जाते हैं। हड़ताली लोगों तथा भूखे बेकारों के बीच हिंसक संघर्ष शुरू हो जाता है। दुनिया में ऐसी भयंकर आर्थिक मंदी और छंटनी पहले नहीं हुई थी। ऐसे में कारपोरेट घरानों के बड़े उद्योगपति और व्यापारी क्या अब तक हुए हजारों करोड़ के अपने विराट लाभ का एक हिस्सा गरीबों में बांटना चाहेंगे?

हालत यह है कि लाखों लोग अपनी विपन्नता और निस्सहायता अपनी मध्यवर्गीय शर्म के कारण जाहिर ही नहीं कर पा रहे हैं। वे बदहाल हैं और किंकर्तव्यविमूढ़ हैं। गृहबंदी का अवसाद अलग से है। मनोरोग बढ़ रहा है। क्या जो बे-आवाज किए जा चुके हैं, हमारा राष्ट्र उनको भोजन और चिकित्सा जुटा देगा? राष्ट्रीयता का अर्थ है, यदि कोई

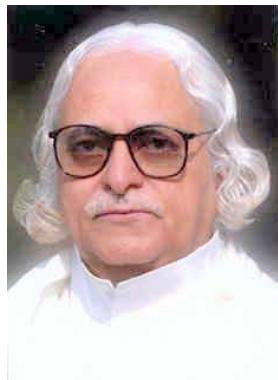
इस तरह विपत्ति में हो तो उसके पास धर्म, जाति और दल-मत से ऊपर उठ कर खड़े हो जाओ। हमारा देश ऐसी राष्ट्रीयता देखने के लिए बेचैन है। क्या हमारी राष्ट्रीय भावना इतनी विकसित है, क्या उसका मानवतावाद से संबंध है?

**लाखों लोग वस्तुतः अपनी विपन्नता और निस्सहायता अपनी मध्यवर्गीय शर्म के कारण जाहिर नहीं कर पा रहे हैं। वे बदहाल हैं और किंकर्तव्यविमूढ़ हैं।**

मैं ऑनलाइन निकालने का फैसला लेना पड़ा है। यह अगले महीने से हर 15 दिन पर निकला करेगा। अगले अंक से यह ऑडियो-विजुअल सामग्री के साथ पढ़ने के लिए होगा, विशेष तकनीकी 'इफेक्ट' के साथ! हमें पढ़ने की संस्कृति को लगातार विकसित करना है। लेखक कृपया छोटी और अच्छी रचनाएं भेजे जो अप्रसारित हों। इस संकटकालीन साहित्यिक मुहिम में आप सभी से सहयोग की आशा है। कामना कीजिए कि हम फिर प्रिंट माध्यम में लौट सकें!

**शंभुनाथ**

# कविताएँ



## जाविर हुसेन

वरिष्ठ कवि । हिंदी पत्रिका 'दोआबा' के संपादक । राज्य सभा के पूर्व सदस्य ।

जाविर हुसेन, सुभाष राय, अनुपम, रंजना अरगड़े, अनिरुद्ध सिन्हा, अहमद नियाज रजजाकी, वासुदेव नाडिंग (कन्नड़), नथाली हैंडल (अमेरिका)

## राजा भी जानता है

मुझे मालूम है  
एक दिन मेरी ये तहरीरें  
मेरे लिए जेल के दरवाजे  
खोल देंगी

फिर भी मैं  
लिखता हूँ  
अपनी कविताएँ अपनी डायरियाँ

खोलता हूँ  
अपने समय के क्रूर सच  
अपने राजा की मक्कारियाँ  
उसके छल की अंतर्कथाएं

कितनी भी धुंध भरी हो  
हमारे समय में कितना भी कुहरा

नामुमकिन है मेरे लिए  
अपनी कविताओं से आंखें चुराना

राजा भी जानता है  
मेरी मिट्टी की यह सिफत ।

# राजा

1.

राजा ने कहा  
मैं कहूँगा तुम सुनना  
तुम्हारे कहने की बारी  
एक सदी बाद आएगी

दरबारियों ने  
राजा का समर्थन किया  
जनता ने ताली बजाई

2.

मंत्री ने  
घोषणा पत्र पढ़ा  
राजा ने मुहर लगाई  
जनता ने दोबारा  
ताली बजाई ।

3.

कारिंदों की फौज आई  
जनता  
हिरासत में ले ली गई ।

मैं पहचानता हूँ उन्हें

उनके हाथों में  
पत्थर थे  
बेशुमार पत्थर  
मुँह में बेपर्द  
गालियाँ थीं  
मेरे छोटे-से घर में



उन्होंने ही तो  
माचिस की तीलियाँ  
लगाई थीं  
थोड़ा बहुत जो  
अनाज रखा था  
बचाकर मैंने  
बुरे दिनों के लिए  
उसे लूट लिया था

मेरी आंखें पहचानती हैं उन्हें  
तलवारें लिए  
वही तो थे जो  
ऊँची नस्ल के घोड़ों पर सवार  
मेरी बस्ती को लूटने आए थे  
तब उनके हाथों में  
संविधान के जले पन्ने थे ।

## शोर से सुलह

मुझे नहीं मालूम  
शोर मेरे पास से  
गुजर रहा था या  
मैं शोर के पास से

शोर मुझ से  
उतना ही परेशान था  
जितना मैं उससे  
फिर हमने  
पड़ोसी की मदद से  
आपस में सुलह कर ली  
शोर थककर सो गया ।



# अदालत ने पूछा

क्या तुम्हें अच्छी तरह याद है  
उस रात तुम  
घटनास्थल पर नहीं थे

जी मुझे याद है  
अच्छी तरह कि  
मैं वहाँ नहीं था

फिर बीती रात तुम  
नींद में अपने वहाँ  
होने की बात क्यों  
स्वीकार रहे थे

अच्छा क्या मैंने  
ऐसा किया

तुमने तो ये भी कहा कि  
घटना के बाद  
वो तमचा तुमने  
कहाँ छिपाया

क्या मैंने अनाज की उस कोठी का  
नाम भी लिया

अदालत ने संतुष्ट होकर  
फैसले की तारीख  
मुकर्रर कर दी ।

## गिरफ्त में नाव

समंदर की  
ऊपरी सतह पर



कुछ बड़ी मछलियाँ  
बड़ी देर से उछलकूद  
कर रही हैं

जैसे उनकी  
कोई कीमती शय  
खो गई हो

हिचकोले खाती  
मेरी नाव  
कब से उनकी  
गिरफ्त में है ।

## मुझे क्या पता

मैं सफर में था  
मुझे क्या पता  
रहे नाशनास<sup>1</sup> में  
क्या कहूँ  
मेरे पांव कैसे  
झुलस गए ।

<sup>1</sup> नाशनास - अपरिचित

247 एम आई जी, लोहियानगर  
पटना - 800020 मो.9431602575  
[jabirhusain@yahoo.com](mailto:jabirhusain@yahoo.com)





## माँ

बड़ा होकर भी मैं  
बच्चा ही रह गया हूँ  
माँ नहीं चाहती  
मैं बड़ा हो जाऊँ  
वह जानती है बड़े होते ही  
बच्चे चले जाते हैं  
माँओं से दूर

मेरे पास प्रेम और आंसू हैं  
उसकी आंखों से छुलके हुए  
माँ मेरी आत्मा मैं  
समाई हुई है  
जब तक माँ है  
मैं बड़ा कैसे हो पाऊंगा।



## सुभाष राय

वरिष्ठ पत्रकार। संप्रति लखनऊ  
में 'जनसंदेश टाइम्स' के प्रधान  
संपादक। 'सलीब पर सच'  
कविता संग्रह और 'जाग मछन्दर  
जाग' लेखों का संकलन।



## पुकार

गूंजी एक आर्त पुकार  
जंगल के आर-पार

हिरन जा पहुंचा  
पुकार के उठने की  
गंध थी जहाँ  
निहारता यहाँ-वहाँ

पुकार को उड़ा  
ले गई हवा  
एक तीर आकर  
हिरन के कलेजे में धंसा

समझा नहीं बेचारा  
शिकारी था  
हिरनी की आवाज में  
पुकारता हुआ।

## चिट्ठियाँ

### 1.

मैं लिखता रहा लगातार  
चिट्ठियाँ तुम्हारे नाम  
बस तुम्हारा पता  
नहीं था मेरे पास

अब चिट्ठियों से  
भर गया घर  
मैं आ गया बाहर  
तुम्हारा पता मिले  
तो मुझे वापस जाने  
का रास्ता मिले।

## 2.

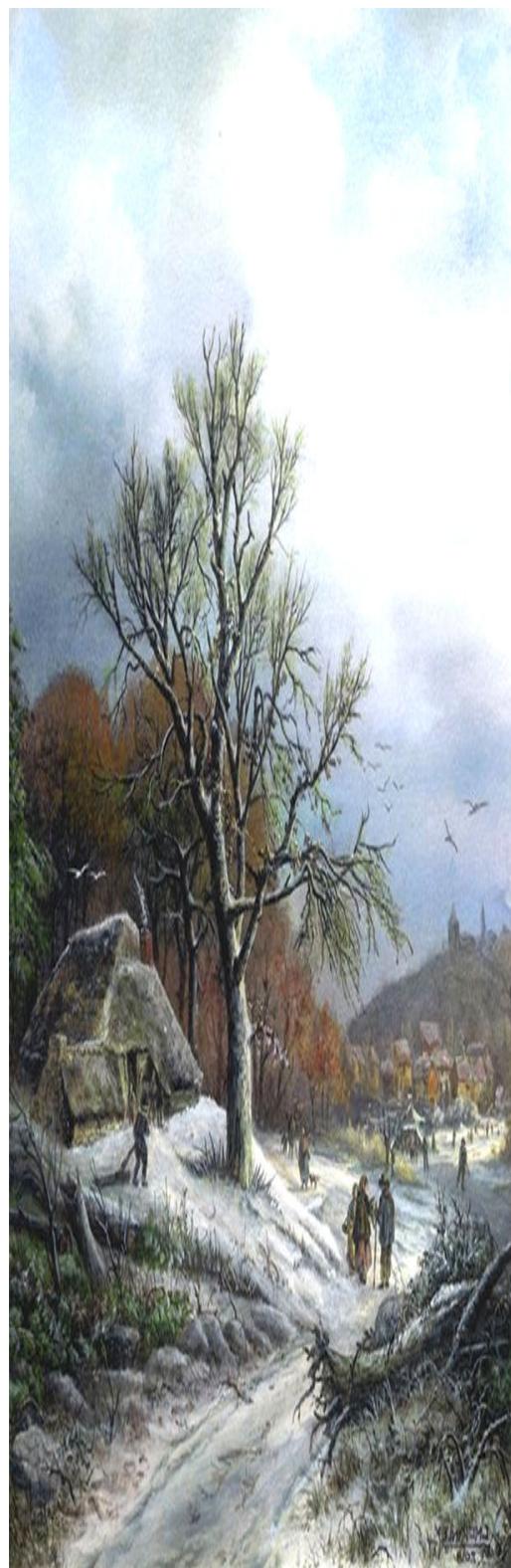
मैंने लिखा प्यास  
और एक नदी बह निकली  
  
मैंने लिखा प्रेम  
और धरती आसमान से लिपट गई  
  
मैंने लिखा सपने  
और कंधों पर उग आए पंख  
  
मैंने लिखा इन सपनों में  
शामिल हो तुम  
और शब्द महक उठे ।

## सुंदरतम

प्रकृति रचती रहती है  
सुंदर, बहुत सुंदर  
  
जो बहुत सुंदर है  
वह बहुत देर तक  
बहुत सुंदर नहीं रह सकता  
  
प्रकृति रचना चाहती है  
उससे भी सुंदर  
क्योंकि अभी रचा जाना बाकी है  
सबसे सुंदर  
  
आंखों की भाषा से  
जब भी किसी की  
जुबान बंद कर दी जाती है  
आंखें बोलना शुरू कर देती हैं  
  
जुबानें अलग-अलग  
हो सकती हों सारी दुनिया में  
पर एक होती है  
आंखों की भाषा ।

मो. 9455081894

प्रगति 17





## भूमंडलीकरण

1.

एक जैसी इमारतें, एक जैसे कमरे  
एक जैसे चेहरे, एक जैसी भाषा  
एक जैसा अंदाजे-बयां  
  
एक जैसी मौत, एक जैसी कब्र  
यानी ऊब ही ऊब  
बहुत खूब!

## अनुपम

‘भारतीय सिने-सिद्धांत’  
(सिने-चिंतन) और ‘जलतरंगों की  
आत्मकथा’ (कविता-संग्रह)।



2.

भाषा से नफ़रत  
शब्द से नफ़रत  
शब्द में जीने वाले मन से नफ़रत  
मन को रखने वाले तन से नफ़रत

‘खांखर’ शब्द को क्यों रख दें आंग्ल में?  
उसे वहाँ भी क्यों न रहने दें - जहाँ है?

पंछियों का बदलें भूगोल  
बदल दें जलवायु!  
सभी पेड़ एक ऊंचाई के  
सभी फूल निर्गंध ।

3.

चोरों ने तय किया -  
वे अपना संविधान बनाएंगे,  
अपनी सहूलियत के लिए इस संसार में  
वे अपना चोर-संसार बनाएंगे  
उनकी अपनी नैतिकताएँ होंगी  
अपने आदर्श, सबसे बढ़कर यह कि उसमें

जो नहीं होंगे चोर  
उनके लिए भी काफी जगह होगी...।

#### 4.

पहले थोड़ा गेहूँ डालो  
चक्की चला दो  
फिर थोड़ा कंकड़ डालो  
चक्की चला दो  
एक झक्कास पैकेट में बंद करो  
बाजार में पंहुचा दो  
चक्की चलती रहेगी!

#### 5.

खुश हो लोग  
लोकल ट्रेन में ठंसे हुए हैं  
मगर खुश हैं!  
पावों तले रैंदे जाने के बावजूद खुश हैं  
तीसरी दुनिया के देशों में-  
यह बात पसंद नहीं आती बुश को  
कि अभी तक लोग खुश हैं...

#### 6.

सवाल यह नहीं है कि  
पुरुष औरत को देह समझता है  
औरत भी यही समझती है



और पुरुषों की मिलीभगत से  
चल रहा है कारोबार  
देह एक प्रोडक्ट -  
एक प्रोडक्ट को बेचने के लिए देह-  
देह साबुन, देह तौलिया, देह चादर  
देह जूस, देह चॉकलेट, देह पेट्रोल  
देह मिसाइल

देह ही देह से भरी है  
विश्व-बाजार की फाइल!

## 7.

वे भविष्य में एक गोली दागेंगे  
जिसकी आवाज वर्तमान में सुनाई देगी  
और लहूलुहान होगा अतीत  
फिर हमारे संग्रहालय, पुस्तकालय  
और सभी तरह के आलय  
जिसमें हम अपना इतिहास रखते हैं  
जला दिए जाएंगे!  
वहाँ लटका दी जाएंगी  
उनके नाम की तख्तियाँ  
हमारे हजारों साल के इतिहास को मेटकर  
वे अपना दो हजार साल का  
इतिहास पढ़ाएंगे  
हमारी अगली पीढ़ियों को आधुनिक बनाएंगे!



## 8.

पूरब के दिल में इस तरह एक सन्नाटा  
फैल रहा है  
जैसे पुराना बड़ा कमरा हो जिसमें  
बरसों से कोई नहीं रह रहा हो!

सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी- 221001 मो. 9936078029

ईमेल- *dranupamojha@gmail.com*



# माँ

कई-कई झरने  
फूटे  
भीतर से  
अंतस्तल से  
जन्म जन्मांतरों के  
भिगोते अंतर-बाह्य  
सलवटें मुलायम हुईं  
पहाड़ों के तन की।

## रंजना अरगड़े

शमशेर बहादुर सिंह पर विशेष कार्य।  
कवि और अनुवादक।

# बहनें

बहनें  
खास होती हैं  
उसी मांस-मज्जा-रक्त से निर्मित  
सुख-दुख के उन्हीं तागों से बुनी  
एक ही रंग की झाइयों में रंगीं  
बहनें खास होती हैं  
  
लड़तीं-झगड़तीं  
पीटतीं-पिटवारीं  
साथ-साथ रहने वाली बहनों के  
पते बदल जाते हैं  
पर उनका दिल  
एक ही खूंटे से बंधा होता है  
जो उनका स्थायी पता होता है  
जिस पर उनका कोई  
हक नहीं होता  
इस पते से उनकी पहचान नहीं होती  
मेहमान की तरह आती हैं और

चली जाती हैं  
कभी साथ-साथ  
कभी अकेली  
बहनें

बचपन की छुप्पन-छुपाइयाँ  
बदल जाती हैं  
यादों की छुप्पन-छुपाइ में  
याद कर-कर के हँसती हैं  
अकेले में  
जब दुकेली नहीं होती हैं बहनें

जब साथ होती हैं बहनें  
एक-दूसरे की छुपाइयाँ  
सालों बाद खुलने पर  
खिलखिलाती हैं बहनें

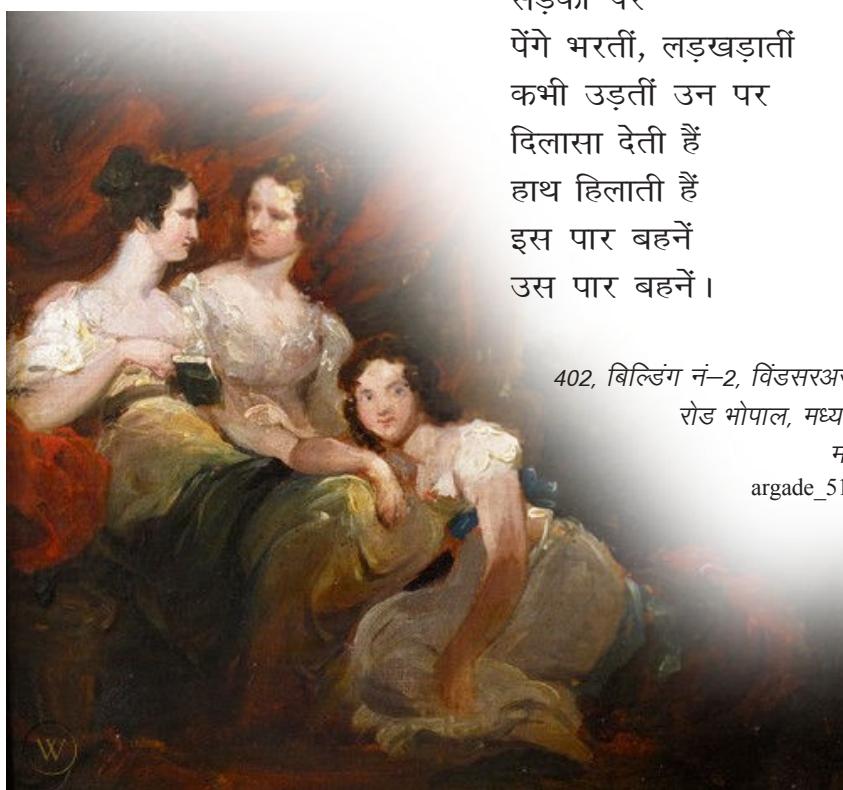
चमचमाती अँधियाली भीड़ भरी  
सड़कों पर  
पेंग भरतीं, लड़खड़ातीं  
कभी उड़तीं उन पर  
दिलासा देती हैं  
हाथ हिलाती हैं  
इस पार बहनें  
उस पार बहनें।

402, बिल्डिंग नं-2, विंडसरअरालिया, कोलार

रोड भोपाल, मध्य प्रदेश 462042

मो. 9426700943

argade\_51@yahoo-co-in





## अनिरुद्ध सिन्हा

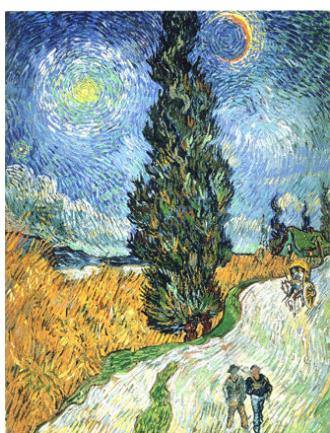
चर्चित गजलकार। सात  
गजल संग्रह, और आलोचना  
की सात पुस्तकें।

## गजल

### 1.

सवाल इसका नहीं क्या कोई नहीं देगा  
सुकूँ जो घर में है वैसा कोई नहीं देगा  
अगर दरख्त न होंगे तो ये समझ लीजै  
सफर की धूप में साया कोई नहीं देगा  
तमाम लोग तुम्हारी हँसी उड़ाएंगे  
मुसीबतों में सहारा कोई नहीं देगा  
खुद अपनी आग जलाकर चलो अंधेरों में  
जो बुझ गए तो उजाला कोई नहीं देगा  
अगर भलाई के कामों में तेरा हाथ नहीं  
तेरे किए का हवाला कोई नहीं देगा।

### 2.



हवा जो बदली अचानक बदल गया सब कुछ  
हमारे हाथ में जो था निकल गया सब कुछ  
हमारी आग से झुलसा न एक पत्ता भी  
तेरी निगाह के शोलों से जल गया सब कुछ  
फरेब आंखों को ऐसा दिया बहारों ने  
चमन-चमन को लगा फूल-फल गया सब कुछ  
जिधर भी देखिए अपने में कुछ कहीं भी नहीं  
मगर ये दावा बहुत है संभल गया सब कुछ  
खुशी का देखना मौसम जरूर आएगा  
अगर हमारे संभाले संभल गया सब कुछ।



### 3.

तहों में दलदल सतह पे साजिश धुआँ-धुआँ-सा हरेक घर है  
झुकी हुई है हमारी गर्दन घरों में रह के भी दिल में डर है

हताहतों से लिपट गए हैं अलग-अलग ये तमाम चेहरे  
उदास मौसम उदास दुनिया उदासियों में डगर-डगर है

कहाँ है बादल कहाँ समंदर कहाँ घटाओं का शोर-गुल भी  
सभी परिंदे थके-थके हैं थकन का मौसम शजर-शजर है

है शोर इतना खमोशियों का है बोझ इतना अकेलेपन का  
हरेक घर का यही है मंजर जो कुछ इधर है वही उधर है

हथेलियों पर पड़े हैं आँसू किसे है फुर्सत जो बढ़ के देखे  
जिधर भी देखो बिछी हैं लाशें ये एक मंजर नगर-नगर है।

गुलजार पोखर, मुंगेर-811201 मो.7488542351

Email: [anirudhsinhamunger@gmail.com](mailto:anirudhsinhamunger@gmail.com)

# वाह क्या बात है!



## अहमद नियाज रज्जाकी

युवा कवि। 'अंजुमन' पत्रिका के कला संपादक। स्वतंत्र लेखन और चित्रकारी।

बाढ़ से घिरा है मेरा गांव  
सड़कों पे चलती है नाव  
वाह क्या बात है !

तैर कर आता हूँ  
तैर कर जाता हूँ  
नून रोटी खाता हूँ  
फिर भी मुस्काता हूँ  
वाह क्या बात है!

जेब नहीं धन नहीं  
मुख पे शिकन नहीं  
जीवन को तन नहीं  
मौत को कफन नहीं  
वाह क्या बात है!

## आधुनिक इंसान

शवयात्रा में शामिल हूँ मैं भी  
लेकिन  
लेता हूँ सेल्फी प्रसन्नचित्त  
करता हूँ बेतुकी बातें  
हँसी-मजाक  
शवयात्रा में-  
चलते-चलते  
करता हूँ दलाली जमीनों की  
लगाता हूँ ठहाके  
चबाता-थूकता हूँ पान  
क्योंकि, मैं हूँ  
गाँव का-  
आधुनिक इंसान।



## अगर तुम चाहो

मन की धरती बंजर हो गई है  
खो चुकी है नमी  
कहीं दरक गई है मिट्ठी  
कहीं उग आए हैं झाड़ झांखाड़  
नागफनी और बबूल  
मन की धरती पर  
अब नहीं रोपा जा सकता  
कोई नाजुक पौधा

अब नहीं लगाया जा सकता  
कोई कामिल पेड़  
अब नहीं उगाई जा सकती  
कोई फसल  
अब नहीं खिलाया जा सकता  
कोई फूल  
लेकिन  
अगर तुम चाहो...।

## तेरे—मेरे ख्वाब

तेरे काले ख्वाबों की  
ताबीर देखता हूँ मैं  
तलवार देखता हूँ मैं  
त्रिशूल देखता हूँ मैं  
बेगुनाह पावों में -  
जंजीर देखता हूँ मैं  
अपने उजले ख्वाबों की  
तस्वीर देखता हूँ मैं  
कि प्यार देखता हूँ मैं  
और फूल देखता हूँ मैं  
प्यार और फूलों की  
तासीर देखता हूँ मैं।

कलवारी टोला, नई झूँसी,  
इलाहाबाद-211019 मो.9889470293



कन्नड़ कविताएँ

## बचाए बिना

### वासुदेव नाडिग

कन्नड़ के युवा कवि। आठ  
कविता संग्रह प्रकाशित।

अनुवाद : डी. एन. श्रीनाथ

मोम की बाती

रोशनी बोकर

आखिर में

जल गई

अपने लिए कुछ रोशनी बचाए बिना

कपूर की आरती

सुगंध फैलाकर

आखिर में

पिघल गई

अपने लिए कुछ भी सुगंध बचाए बिना

ओखली

स्वाद छलकाकर

आखिर में

घिस गई

अपने लिए कुछ भी स्वाद बचाए बिना

बहती नदी

प्यास बुझाकर

आखिर में

सूख गई

अपने लिए कुछ भी आर्द्धता बचाए बिना

कुछ लोग

जान लगाकर

आखिर में

मर गए

अपने लिए भी थोड़ी जिंदगी बचाए बिना!

## करुणा

कहते हैं कुछ लोग  
यह दुनिया आग से हो जाती है नष्ट  
यह दुनिया पानी में जाती है ढूब  
यह दुनिया कंपन से हो जाती है समाप्त  
यह दुनिया हवा से जाती है सिकुड़  
यह दुनिया बर्फ से जाती है जम

उंगलियों को छूनेवाली  
आग पानी हवा बर्फ मिट्टी  
इतने तो निर्दय नहीं कि ये मार डालें

कुछ लोगों को तो कहना चाहिए न  
इस दुनिया ने पंचभूतों की करुणा में  
सिर उठाया है  
करुणा ने यदि सांस को रोका हो तो?  
हजारों-हजार जीव जाते हैं सिकुड़

हे पंचभूतो! बनी रहे करुणा  
छोटे-छोटे लोगों पर क्या क्रोध!  
तुच्छों के अंत के लिए  
क्या आपको ही आना है?

वासुदेव नाडिग : मो.9591960434

डी.एन.श्रीनाथ : नवनीता, सेकेंड क्रॉस,  
अन्नाजी राव लेआउट, फस्ट स्टेज,  
विनाबानगर, शिमोगा-577704 (कर्नाटक)  
मो.9611873310





अमेरिकी कविताएँ

अनुवाद

बाल मुकुंद नंदवाना

## पंखों के बारे में

### नथाली हैंडल

बेथेलेहम के फिलिस्तीनी परिवार में जन्मी,  
फ्रांसीसी-अमेरिकी कवयित्री और लेखिका।  
वर्तमान में कोलंबिया यूनिवर्सिटी में  
अध्यापिका।

हमने केवल चाबियों का गुच्छा  
चिट्ठियाँ और कुछ तस्वीरें पास रखीं  
बाकी सब पीछे रह गया  
जब हमने घर छोड़ा

ऐसा सिर्फ तब हो सकता है  
जब एक राष्ट्र रातोंरात बदल जाता है  
और जिन्हें आप जानते हैं  
वे बदल जाते हैं पंखों के एक द्वार में  
पंखों के बारे में एक कथन है  
वे जानते हैं कि क्या छूट गया है

वर्षों से मैं देखती हूँ  
अपने पड़ोसी के घर को  
दूसरों की खिड़कियों से  
तरह-तरह के देश  
तरह-तरह के घर  
कुछ ईंट के, कुछ पत्थर के  
कुछ लोग कभी कल्पना नहीं करते  
कि घर का क्या मतलब हो सकता है  
जब एक अधूरी धुन  
छत को एक फंदे में फाँस लेती है  
मैं ढोंग करती हूँ



मैंने कभी नहीं देखा  
किसी जिस्म को  
अधर में लटके हुए  
एक पिता के हाथ को  
जमीन में गहरे धँसे हुए  
हम आखिर जिसे स्वीकार नहीं करते  
वह कभी हुआ ही नहीं जैसे  
लेकिन मुर्सिया के उस दिन को  
मैं बदल नहीं सकी  
जब पानी दरवाजे पर  
रोशनी लेकर लाया  
मैं सात साल की हूँ  
हमारे विदा होने से पहले का  
वह दिन जब मेरे पिता  
मुझे एक नोटबुक थमाते हैं  
और मैं उन्हें कहती हूँ  
यही वह जगह है  
जहाँ मैं अपना देश सहेज कर रखूँगी।



## बार्सिलोना में वसीयतनामा

इतिहास को दौड़ाया नहीं जा सकता  
हमारे पास गांव को देखने का समय नहीं था  
मिट्टी से रोशनी बनाने के लिए  
घरों को गिरते देखने का  
हमारे पास समय नहीं था  
न ही हमने समय को धधकते देखा  
शहर गायब है  
और हमने दूसरों को बचा लिया है  
हमारी पीठें झुक गईं  
जो हुआ था  
हर दिमाग में उसकी एक अलग सचाई है  
पर हमने जो दिशा पकड़ी  
हमें बताती है कि दुनिया खत्म नहीं होती  
जब हम हड्डियों से हवा को बाहर धकेलते हैं  
कॉफी का कप ठंडा हो जाता है  
तब हम उस मिथ को जानते हैं  
और समझते हैं जो हमें कभी बताया गया  
कि कैसे चुनें हम रास्ता  
अपनी चाहतों के समानांतर।

बाल मुकुंद नंदवाना  
152, टैगोरनगर, हिरण्यमगरी, सेक्टर-4,  
उदयपुर : 313002 मो.9983224383

# बहस

मेधा पाटकर, वैभव सिंह  
हिंतेंद्र पटेल



## कोरोना महामारी : एक सामाजिक किताब प्रस्तुति : मधु सिंह

### मधु सिंह

विद्यासागर विश्वविद्यालय,  
मेदिनीपुर में शोध छात्रा।  
कोलकाता के खुदीराम  
बोस कॉलेज में  
प्राध्यापन।

कोरोना महामारी ने विश्व में और अपने देश भारत में भी मानवीय दायित्वबोध, अर्थव्यवस्था, विज्ञान और स्वास्थ्य सेवाओं के संदर्भ में कई नए तथ्यों का उद्घाटन किया है। आज हर तरफ भय, अनिश्चितता और असहायता के दृश्य हैं, वहीं मानवीयता के उदाहरण भी कम नहीं हैं। लॉकडाउन के बाद हर क्षेत्र में चुनौतियां बढ़ी हैं। लोग लंबे समय से घरों में बंद हैं और काम-काज नहीं है।

**‘वागर्थ’ के अगले अंक में  
पढ़ें सामाजिक चिंतक  
सुधीर चंद्र, आदित्य  
निगम और प्रियदर्शन की  
विचारपूर्ण टिप्पणियाँ!**

एक तरह से यह जीवन के लिए जंग का दौर है तो प्रकृति, विज्ञान और मनुष्यता से अपने नए रिश्तों को समझने का भी। कोरोना एक महामारी ही नहीं, एक खुली सामाजिक किताब भी है। हम इस सदी के भयंकरतम संकट के दौर में प्रस्तुत कर रहे हैं सुप्रसिद्ध पर्यावरण योद्धा मेधा पाटकर, आलोचक वैभव सिंह और हिंतेंद्र पटेल के विचार। उठे मुद्दों पर बहस के लिए आप आमंत्रित हैं।

## सवाल

- (1)** विश्व कारोना से पहले भी महामारियों का सामना कर चुका है। इस बार का संकट क्या है और सामाजिक दायित्वबोध कितना महसूस किया जा रहा है?
- (2)** प्रकृति से छेड़छाड़ और जलवायु परिवर्तन से कोरोना महामारी का क्या संबंध है?
- (3)** कोरोना काल में परिवार और मानवता की अवधारणाएँ कितनी प्रगाढ़ हुई हैं?
- (4)** लॉकडाउन और इसके बाद शहर और गांव की स्थितियों को आप किस नजर से देखते हैं?
- (5)** कोरोना महामारी का अर्थव्यवस्था और सामाजिक जीवन पर कैसा असर पड़ रहा है?
- (6)** एक लचीली और उदार संस्कृति किसी महामारी का बेहतर ढंग से सामना करने की शक्ति देती है, भारत की क्या स्थिति है?
- (7)** कोरोना के भय और असुरक्षा भावना का मनोवैज्ञानिक प्रभाव क्या है?



20/1, खगेंद्र चटर्जी रोड, काशीपुर,  
कोलकाता-700002  
मो.9883613002



# कोरोना महामारी के दौर में गांव-स्तर से आत्मनिर्भरता की जरूरत है मानवता के आधार पर एक परिवार की संकल्पना करें

## मेधा पाटकर

सुप्रसिद्ध पर्यावरण योद्धा,  
सामाजिक चिंतक तथा  
समाज सुधारक

(1) 1918 का स्पेनिश फ्लू करोड़ों की जान ले गया था, लेकिन भारत में आज की स्थिति में भी और हर साल हर रोज प्रायः 10 किसान आत्महत्या करते हैं। रोज 2000 से अधिक व्यक्ति गुजर जाते हैं टीबी जैसी बीमारी से, उतने ही तंबाकू से और साल में दो-ढाई लाख शराब से। सबसे दर्दनाक हकीकत हैं रोज कुपोषण, यानी भूख से जिंदगी खोनेवाले बच्चे। इतनी सारी मौतों के बीच शर्वों के ढेर पर खड़े हैं हम, तब मौत की कीमत कौन समझता है और कितनी?

निश्चित रूप से कोरोना वायरस से बढ़ गई है मौत की कीमत और जिंदगी की भी कीमत। दोनों के पीछे भाग रहा देश अचानक रुक गया है। कितनी चिंता होनी चाहिए कोरोना की, और किस दिशा में उठाने चाहिए कदम, इस पर कहें तो चर्चा हो रही है किंतु प्रचार है वह चर्चा, विचार नहीं है। शासनकर्ताओं के आदेश ही फिलहाल सबसे अधिक हैं।

आज हम देखते हैं कि विषाणुओं के स्रोतों पर भारी विवाद है। कोई कहता है कि यह चीन द्वारा अपना साम्राज्य पुख्ता करने तथा अमेरिका से दुश्मनी लेकर उसकी पूंजी और पूंजीपतियों को युद्ध में हराने के लिए निकाला गया विषाणु है। नहीं तो यह बुहान के इर्दगिर्द क्यों फैलता। शंघाय, बिजिंग छोड़कर दूर अमेरिका में क्यों फैला कोरोना। अमेरिका के कुछ कारपोरेट घरानों ने शायद शासन के सहयोग से चीन के विरुद्ध याचिका भी दाखिल की है। उच्च अदालत में उसका नतीजा आने तक वे चीन के विरोध में माहौल बनाने में लगे हैं। अमेरिका की ट्रंपिंग ज्यादा सफल भी नहीं हुई और सार्थक भी नहीं। उनकी बात न्याय प्रक्रिया में क्या रंग लाएगी, यह देखना होगा। अमेरिका में मृत्यु के आंकड़े डर पैदा कर रहे हैं। उसकी स्वास्थ्य सेवा खोखली साबित हो रही है। अमेरिका को खाड़ी में युद्ध से थोड़ा दूर रहकर ध्यान देना पड़ रहा है सुरक्षा पर।

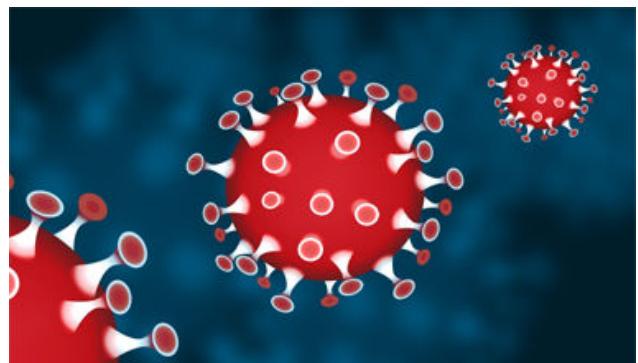
मानव और प्रकृति के बीच रिश्ता बदलने से एक निरंतरता खोती जा रही है। इससे संतुलन बिगड़ता जा रहा है। इसका असर जलचक्र पर ही नहीं, जीवनचक्र पर भी है।

कोरोना को लेकर, जरा रुककर सोचें तो कई बुद्धिजीवी मान रहे हैं कि इससे मनुष्य की सोच बदल सकती है, प्रकृति के प्रति आस्था और जिम्मेदारी का एहसास बढ़ेगा, दायित्वबोध बढ़ेगा। मुझे यह इतनी आसानी से हासिल होने जैसा सपना नहीं लगता। सपना ‘सपना’ होता है। कई भावुक लोग कुछ क्रांतिकारी बदलाव की अपेक्षा कर रहे हैं तो कौन-से ऐतिहासिक अनुभव के आधार हैं हमारे पास? भौतिकवाद और बाजारवाद से हटने के बदले इनकी तरफ देश डटकर आगे बढ़ते हुए दिख

रहा है। हम समाज को- जाति, धर्म, पंथ, प्रांत, भाषा या लिंग-भेद के पार जाते नहीं देख रहे हैं।

कोरोना के खतरे को पूरी दुनिया ने गंभीरता से लिया है, यह हम कह सकते हैं। लेकिन मुझे तो इसमें दुनिया और देश के बाजार में खड़े या बाजार से जुड़े बड़े उद्योगपतियों की एक चाल भी दिखाई देती है। उन्होंने माध्यमों का उपयोग करके कोरोना के रिस्पांस में संवेदना और क्षमता दिखाने के लिए दिया जलाने या थाली बजाने जैसे उपायों का जो सहारा लिया, उससे हम नहीं मान सकते कि ये सही जवाब हैं। मुझे

तो यह दिखता है कि समाज ने सवाल करने की हिम्मत खो दी है और हमने देखा है कि लोगों ने अपने जीने-मरने के सवाल को ही अहम मान कर यह बचपना स्वीकार कर लिया है।



आजकल सत्ता का कारोबार सद्वा का खेल हो चुका है। निश्चित है कि लॉकडाउन के बाद भी जीवन की असुरक्षा का एहसास जनता में बना रहेगा। सत्ताधारियों के लिए जीडीपी के नीचांक पर पहुंचते ही उसे चोटी पर पहुंचाने के लिए कारपोरेट लेन-देन, मशीन-आधारित उत्पादन और निर्माण कार्य को किसी भी कीमत पर बढ़ावा देना उद्देश्य रहेगा। हाँ, समाज के कुछ तबके जो अधिक संवेदनशील हैं, इस दौरान स्वयं के लिए कुछ नया रास्ता ढूँढ़ेंगे या फिर प्रतिरोध जारी रखेंगे।

(2) कुल मिलाकर मानव और प्रकृति के बीच रिश्ता बदलने से एक निरंतरता खोती जा रही है। इससे संतुलन बिगड़ता जा रहा है। इसका असर

जलचक्र पर क्या, जीवनचक्र पर भी है। छोटे-बड़े जीव, मानव तक सभी प्राणीचर प्रकृति के बदलते तेवर झेल रहे हैं। कई प्रजातियां खत्म हो गईं और कई हो रही हैं। जीवन-मृत्यु दोनों इससे संबंधित हैं। एक चमगादड़ में ही नहीं, कई प्राणी-वनस्पति, जीव-जंतुओं और मानव की भी शरीर-प्रकृति में बदलाव हो रहे हैं। कोरोना का प्रकृति से संबंध स्थापित करना सहज नहीं है। हाँ, जल और जलस्रोत नदी सह सभी प्रकार के पेड़, जंगल और हरा आच्छादन बदलाव के केंद्र हैं। न केवल शुद्ध हवा और पानी की समस्या बढ़ रही है, बल्कि जब जीवन की दुनिया में सभी प्राकृतिक संसाधनों का अपना-अपना योगदान बदल रहा है, तब कई शृंखलाएं खत्म हो रही हैं। जब जलवायु परिवर्तन से तापमान 2 डिग्री बढ़ने का खतरा है, तो सभी कीटाणु और जीव भी मौत के कगार पर ढकेले जा सकते हैं।

लॉकडाउन के समय  
महिलाओं के प्रति  
हिंसा में बढ़ावा आया।  
घरेलू हिंसा का बढ़ना,  
सामाजिक और  
मानवीय मूल्यों के  
ढलान का चिह्न है।

इसके साथ हम ‘दम घुटना’ भी कहना चाहेंगे कि प्राणवायु (आक्सीजन) की कमी से जीवन प्रभावित हो रहा है। कार्बन एक बड़ा धातक पदार्थ है। सवाल है,  $CO^2$  को निगल कर  $O^2$  दान करने वाले पेड़ हम क्यों खत्म कर रहे हैं। जैवविविधता के साथ।

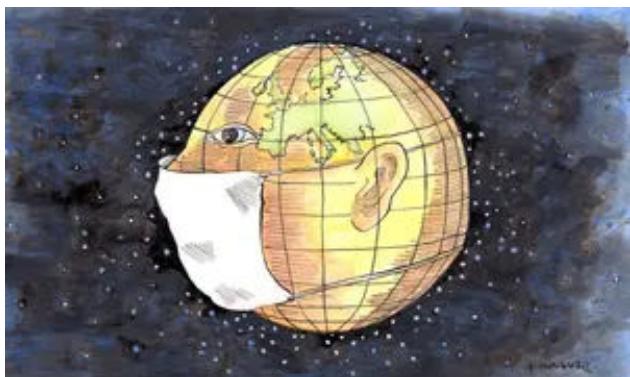
कोरोना ही नहीं, समय-समय पर आने वाले हमलाखोर विषाणुओं की जन्मपत्री ही स्पष्ट नहीं है। उनका स्थान और प्रयोगशाला या प्राकृतिक परिवेश में निश्चित समीकरण स्थापित करना हम जैसे जनसामान्य के लिए असंभव है ही, दुनिया भर के वैज्ञानिक भी ऐसा नहीं कर पा रहे हैं। लेकिन

कोरोना का संदेश निश्चित ही ‘प्रकृति से खिलवाड़ करो ना’ और ‘प्रकृति-मानव का रिश्ता सुदृढ़ करने के लिए कुछ तो करो ना’ का है!

(3) परिवार अनेक सामाजिक संस्थाओं में से एक है। समाज में न केवल स्त्री-पुरुष, बल्कि इंसान और इंसान के बीच भावनाशील रिश्तों का निर्माण इस मंच पर सबसे अधिक होता है। इससे मनुष्य को जीने का

एहसास और आधार प्राप्त होता है, यह निश्चित है। लेकिन इस संस्था में जकड़ कर रखने से विकृतियां भी बढ़ती हैं जिन्हें दूर करने का रास्ता मात्र एक ही है— व्यापक सामाजिक भाव। इस सामाजिकता के लिए हर इंसान का परिवार से आगे बढ़ कर रिश्ता बनाना और इस भाव-बंधन का भी दृढ़ होना जरूरी है। इस प्रक्रिया में जाति, धर्म, प्रांत, लिंगों का ढह जाना जरूरी है।

कोरोना के दौर में परिवार के साथ जीना उन हजारों नहीं लाखों श्रमिकों को तो संभव नहीं होता, जो जीने और परिवार के पालन के लिए जीविका ढूढ़ने बाहर निकलते रहते हैं। उनकी जड़ें फिर भी परिवार में होती हैं। लॉकडाउन में आजीविका से दूर किए जाने पर, उन्हें परिवार के पास पहुंचने की आस 1000 / 1500 किलोमीटर पैदल चलने की ऊर्जा और ताकत देती है, इस बार यह स्पष्ट दिखाई दिया है। रास्तों में कई व्यक्तियों की मौत भी हुई। 12 वर्ष की एक बच्ची ने तेलंगाना से छत्तीसगढ़ जंगल के रास्ते चलने के बाद घर से सिर्फ 14 किलोमीटर दूर दम तोड़ दिया। ऐसी एक नहीं अनेक खबरें आ रही हैं। पैरों में छाले लिए आपस में मिलकर चलते इन लोगों को



समझाने-बुझाने के बावजूद मैंने देखा, ये रुकने को तैयार नहीं हैं। शासन ने उनके वाहन की पर्याप्त व्यवस्था नहीं की। पारिवारिक रिश्ते और सामाजिक-राजनीतिक दायित्व के बीच टकराहट है। हमारे दिलों को रौंदते चले जा रहे श्रमिक हमें शर्मिदा कर रहे हैं।

दूसरा समुदाय अपने बैंक बैलेंस और साधन संपदा के साथ रहने वाला है। उनकी बेटी यदि पढ़ने के लिए कहीं दूर गई हो तो वे बेचैन रहे। प्रशासन ने ऐसे व्यक्तियों को मिला भी दिया। परिवारों में विभिन्नता है। फिर भी साधन-संपन्न परिवार सुकून पाए लॉकडाउन में। लॉकडाउन के समय महिलाओं के प्रति हिंसा में बढ़ावा आया। घरेलू हिंसा का बढ़ना, सामाजिक और मानवीय मूल्यों के ढलान का चिह्न है।

मानव के जीवन में विषाणु का स्थान भी रहता है। इंसान और इंसान के बीच रिश्तों का चौतरफा निर्माण और बचपन से ही इसकी शिक्षा का प्रसार विषाणु को भी खत्म नहीं तो दूर जरूर रखेगा।

‘इंसान का इंसान से इंसानियत के ही रिश्ते’ की, हमारी सुबह की ऐसी ही प्रार्थना का स्वर गूंजता रहे, यह जरूरी है। इसी से क्रूरता, हिंसा और द्वेष खत्म हो सकता है। यह सब कोरोना और लॉकडाउन तक सीमित नहीं है। अलग-अलग तरह से परिवार, छोटे से बड़े तक सभी का संकल्प होना चाहिए कि परिवार से लेकर गांव, देश और दुनिया को मानव जाति को मानवता के आधार पर चलने-चलाने के लिए ‘एक परिवार’ की संकल्पना बेहद जरूरी है। ‘परिवार’ सहज, सुंदर और समता-न्याय पर आधारित होता

है। समुदाय की संकल्पना भी भाव-संबंधों को निखारनेवाली होनी चाहिए। बाजार ऐसी संकल्पनाओं को विकृत करता है। हमारे सामने चुनौती है कि बाजारी लेन-देन, शोषण और पूंजी का स्थान और प्रभाव कैसे सीमित रखा जाए। अगर हम इंसानियत के आधार पर पारिवारिक संबंध बनाए रखना चाहते हैं तो ऐसा करना होगा। दूसरी चुनौती है, स्वार्थ और उपभोग की। यह काफी हद तक बाजारी मनोवृत्ति से उभरता है। मानव के जीवन में विषाणु का स्थान भी है। इंसान और इंसान के बीच रिश्तों का चौतरफा निर्माण और बचपन से ही इसकी शिक्षा (हर प्रकार की और हर स्तर की) का प्रसार विषाणु को भी खत्म नहीं तो दूर जरूर रखेगी।

**(4)** कई मजदूर रुके थे रास्ते के किनारे, पर नजदीक के गांव वालों ने इन्हें ‘बाहरी’ कह कर हमला करना शुरू

किया। वे किसी तरह गांव पहुंचे तो वहाँ उन्हें अस्पताल में क्वारंटाइन किया। अपारदर्शिता इतनी थी कि उनके परिवार वाले उन्हें कई दिन ढूँढते रहे।... फोन पर टेप चलती है-

‘बीमार से नहीं बीमारी से लड़ें’, लेकिन कोरोना के समय में दूरी तो बन ही गई है। जात, वर्ण और धर्म के भेद के साथ नए भेदभाव जुड़ गए हैं।

मुंबई के कुछ क्षेत्रों में यहाँ, छोटे टीन शेड में 8 बाई 10 फुट के कमरे में 10 लोग रहते हुए भी उनके बीच कोरोना का कम प्रभाव हुआ है, मध्यम और उच्चर्गीयों में अधिक हुआ है। लेकिन देखता कौन है? अगर संक्रमण फैलता है तो दोष किसका है? आवास की अच्छी नीति के तहत



सस्ते में आवास की सुविधा न देने वालों का ही न? शहर में भी भेदभाव का मुद्दा बना। लेकिन गांव में भी बना जहाँ कभी जातिवादी दंगे नहीं हुए थे।

(5) महामारी का नहीं, अर्थव्यवस्था पर लॉकडाउन का असर हुआ है। बहुत से रोजगारों पर और मेहनतकशों के छोटे उद्योगों पर और प्रकृति पर जीने वालों की आजीविका पर बड़ा असर है। यह इतना भयावह है कि जीडीपी की गिरफ्त से बचने की बात बड़े पूँजीनिवेशक, बड़ी कंपनियाँ बड़े पैमाने पर निजीकरण आदि के द्वारा जखर चला रही हैं, लेकिन छोटे, असुरक्षित श्रमिक, कारीगर, दुकानदार, घरेलू नौकरानियाँ हों या निर्माण मजदूर हों, इन सबकी हालत खराब है। अर्थव्यवस्था में ‘मास प्रोडक्शन’ के विरुद्ध ‘प्रोडक्शन बाई मास’ का रास्ता है। इन दो रास्तों में से गांधीवाद चाहता है दूसरा रास्ता। आज आत्मनिर्भर भारत की घोषणा के बावजूद ‘स्वयंनिर्भरता’ का उद्देश्य हमारी अर्थव्यवस्था से हट चुका है।

श्रमिकों की छंटनी में कारखानों के मालिक मनमानी करते हैं। लेकिन आज भी विशेष स्थितियों में श्रमिकों को हटा कर बेरोजगार करने के संबंध में कोई सवाल नहीं कर रहा है।

लॉकडाउन में लिए गए कई निर्णय यही बताते हैं। एक निर्णय है आप्रवासी कॉर्पोरेट क्षेत्र के 8 परिवारों को 68,000 करोड़ रुपये की कर्जमाफी। दूसरा है, विश्व बैंक सहित कई बहुराष्ट्रीय/साहूकारी वित्तीय संस्थाओं के साथ 9 अनुबंधों के द्वारा कोरोनाग्रस्तों के लिए लिया गया कर्ज। बिना सलाह मशविरे या विरोध/प्रतिरोध/आपत्ति के निर्णय हो चुके हैं लॉकडाउन के कारण। अंतरराष्ट्रीय कर्जे के साथ आई शर्तों के कारण ही देश के श्रम कानून, पर्यावरण कानून कमजोर किए जा रहे हैं या हटाए और बदले भी जा रहे हैं। बड़े उद्योगपतियों के पक्ष में हर निर्णय इस तरह हो रहा है

कि आम लोगों और श्रमिकों को न सवाल उठाने का अवकाश है और न विवाद उठाने का । मध्य प्रदेश, गुजरात, उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों ने आदेश निकाल कर शुरुआत कर दी है, जैसे- मध्य प्रदेश की कई औद्योगिक इकाइयों में अब कई श्रम कानूनों के अमल से उद्योगपतियों को छूट दे दी गई है । न श्रमिक कहीं विवाद उठा सकते हैं, न कंपनियों को कानून पालन न करने पर जांच का सामना करना पड़ेगा । इससे जाहिर है कि बेरोजगारी दूर करने के उपाय निकालने की और श्रमिकों को काम ही नहीं, सही दाम और न्याय दिलाने की राजनीतिक इच्छाशक्ति का अब बड़ा अभाव है । आत्मनिर्भर भारत

गांव-निर्भरता और श्रम-निर्भरता के बिना असंभव है ।

कोरोना संकट के दौर में कइयों की नौकरियाँ चली गई हैं । कइयों के उद्योग और व्यवसाय का भारी नुकसान हुआ है । जिनकी नौकरियाँ गई हैं, उनमें अध्यापक और पत्रकार भी शामिल हैं । श्रमिकों की छंटनी में कारखानों

के मालिक मनमानी कर रहे हैं । लेकिन आज भी विशेष स्थितियों में श्रमिकों को हटा कर बेरोजगार करने के संबंध में कोई सवाल नहीं कर रहा है । सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उस लॉकडाउन काल का वेतन देने के लिए सरकारों को निर्देश दिए गए थे ।

अर्थव्यवस्था की आज तक की खामियों का नतीजा भुगत रहे हैं हम देशवासी । देश में रोजगार निर्माण की क्षमता कम होती जा रही है ।

जरूरी है अर्थव्यवस्था को फिर ट्रैक पर लाना । इसका मतलब फिर से मजदूरों को पलायन के लिए मजबूर करना नहीं होना चाहिए । इसका नतीजा यह



**पलायनवादी अर्थव्यवस्था  
को नकार और  
गांव-स्तर से ही  
आत्मनिर्भरता के लक्ष्य  
का स्वीकार जरूरी है।  
इस दिशा में बढ़ने से  
अन्य कई लाभ होंगे।**

होना चाहिए कि देश भर में स्थानीय संसाधन और मनुष्य शक्ति को जोड़ कर गांव से आत्मनिर्भरता शुरू करने के विकल्प खड़े हों। यह अगर करना है तो कॉर्पोरेटीकरण वाली नीतियाँ खत्म करनी होंगी। क्या ऐसा होगा? क्या हम आजादी के बाद श्रमिक जनसंघर्षों से निकले कानूनों का खात्मा सह सकेंगे? यह सवाल भी है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ और पूंजी निवेशकों का बोलबाला है। यह सवाल भी है, खेती पर निर्भर करीब 50–60 प्रतिशत जनता का जीवन कैसा है और कैसा रहेगा? जखरत है कि खेती धाटे से बाहर निकाली जाए, उपज को सही दाम दिया जाए और संकट को देखकर संपूर्ण कर्ज माफी दी जाए।

महिलाओं को, टैक्स न भर पानेवालों को, लॉकडाउन में बेरोजगारी भुगतनेवाले परिवारों को प्राथमिकता देकर मौके उपलब्ध कराने होंगे। वित्तीय सहायता देते समय छोटे स्थानीय उद्योगों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

इन सबकी बुनियाद में पलायनवादी अर्थव्यवस्था को नकार और गांव स्तर से आत्मनिर्भरता के लक्ष्य का स्वीकार जरूरी है। इस दिशा में बढ़ने से अन्य कई लाभ होंगे। पर्यावरण, यानी प्रकृति की रक्षा और विनाश से मुक्ति होगी तथा ग्रामीण क्षेत्र का विकास होगा। इन सब कामों से न्याय और निरंतरता दोनों हासिल हो सकती है जिन पर देश, दुनिया और मानव का भविष्य निर्भर है।

नर्मदा बचाओ आंदोलन, नर्मदा आशीष नवलपाड़ा,  
जिला—बरवानी, मध्यप्रदेश—451551 मो. 9423965153



## यह महामारी जनता को संघर्ष करना भी सिखाएँगी

प्रकृति की रक्षा करने से प्रकृति भी रक्षा करती है

### वैभव सिंह

चर्चित आलोचक। दिल्ली के अंबेडकर विश्वविद्यालय में अध्यापन।

(1) संसार भर में महामारियों के प्रसार का संबंध तेज गति से होने वाले व्यापार, अधिक लोगों के परस्पर संपर्क, औद्योगिक-वाणिज्यिक स्थलों पर भीड़भाड़ बढ़ने से है। भारत में महामारियां बंदरगाहों के आसपास अधिक फैलती थीं और फिर वे दूसरे महानगरों में भी लोगों को संक्रमित कर देती थीं। अंतरराष्ट्रीय जहाज उद्योग के फैलाव के साथ महामारी के फैलने की संभावना अधिक बढ़ी। भारत में 1897 में प्लेग की जो महामारी फैली थी, उसका संबंध भी चीन से था। उसमें लगभग दस लाख लोग मारे गए थे। महात्मा गांधी ने अपने 'हिंद स्वराज' में रेल के बारे में लिखा था— रेल से महामारी फैली है। अगर रेलगाड़ी न हो तो कुछ लोग ही एक जगह से दूसरी जगह जाएंगे। इस कारण संक्रामक रोग सारे देश में नहीं पहुंच पाएंगे। पहले लोग कुदरती तौर पर 'सेग्रेगेशन'-सूतक पालते थे। गांधी ने रेल की बुराइयां बताने में अतिशयोक्तियां कर दी थीं, पर वास्तविकता में उनके विचारों का एक ठोस

ऐतिहासिक संदर्भ था। वह ऐतिहासिक संदर्भ विश्व की वर्तमान स्थिति के कारण अधिक ग्रहणीय हो गया है।

उस समय प्लेग जैसी महामारी तेजी से फैलती थी। अंग्रेज सरकार को लोगों को शारीरिक रूप से एक-दूसरे से दूर रखने के लिए कड़े कानून बनाने पड़े थे। खासतौर पर समुद्र पार की यात्राओं और समुद्री व्यापार को इन महामारियों के फैलने का मुख्य कारण

माना जाता था। यह इतिहास का सुपरिचित तथ्य है कि 1897 में प्लेग महामारी के चलते अंग्रेज सरकार के खिलाफ क्रोध पैदा हुआ था और चापेकर बंधुओं ने उस साल प्लेग समिति के चेयरमैन वाल्टर रैंड और उसके एक सैन्य सहयोगी की हत्या कर दी थी।



(2) लगभग दो सौ साल पहले प्रकृति पर विजय को आधुनिक मानव की जिस महत्वपूर्ण उपलब्धि के तौर पर देखा जाता था, वही उपलब्धि अब उसके लिए अभिशाप बनती जा रही है। एक पौराणिक श्लोक है—‘धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।’ यानी, धर्म का हनन करने से धर्म मारता है और धर्म की रक्षा करने से वह रक्षा करता है। अब धर्म के स्थान पर अगर हम प्रकृति शब्द को रख दें तो यह श्लोक आधुनिक युग में अधिक सार्थक हो जाएगा। तब इसका अर्थ होगा कि प्रकृति का हनन करने से प्रकृति मारती है और प्रकृति की रक्षा करने से वह रक्षा करती है।

महामारियों का संबंध केवल प्रकृति के अतिदोहन अथवा प्रकृति के विनाश से नहीं है। प्राचीन रोमन साम्राज्यों, मध्यकालीन यूरोप तथा अफ्रीका में महामारी

खासतौर पर चूहों, मक्रिखयों आदि से फैलने वाले प्लेग के विषाणु से काफी लोग मारे जाते रहे हैं। इस बात के उदाहरण इतिहास में दर्ज हैं कि अनजान इलाकों में विभिन्न सैन्य अभियानों से लौटे सैनिक अपने साथ महामारी लेकर आते थे। सैन्य अभियानों की सफलता-विफलता या सैनिकों के शौर्य प्रदर्शन की अतिरेकपूर्ण गाथाओं की आड़ में महामारियों से मरे सैनिकों का कटु यथार्थ छिपकर रह गया। यानी प्रकृति के विनाश या प्रकृति से छेड़छाड़ के कारण मौसम परिवर्तन, वैश्विक तापमान वृद्धि आदि संकेत मिल रहे हैं, पर महामारियों का इतिहास प्राकृतिक विनाश के इतिहास से कहीं अधिक प्राचीन है।

(3) गृहबंदी के कारण विभिन्न समाजों में विभिन्न किस्म के पारिवारिक संकट उत्पन्न हो रहे हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, पर साथ ही वह सामाजिक जीवन को नष्ट करने वाला प्राणी भी है। वह समाज बनाता है और सामाजिकता को नुकसान भी पहुंचाता है। वह मनुष्य होने के साथ-साथ मनुष्य-विरोधी होने के लक्षणों से भी ग्रस्त रहता है। वह अपने बहुत सारे कार्यों से समाज में मूल्यहीनता, बर्बरता, अव्यवस्था, हिंसा आदि को भी जन्म देता रहता है। वह अपने स्वार्थ के लिए सामाजिक मूल्यों का पालन करता है और स्वार्थ के लिए ही उन्हें क्षति भी पहुंचाता है। मनुष्य की यह मूल वृत्ति इस संकट काल में भी सक्रिय है।

बहुत सारे ऐसे किस्से सुनने में आए हैं जहाँ लोग परस्पर सहायता कर इस संकट से पार पाने की चेष्टा कर रहे हैं, तो बहुत सारे किस्से सुनने को मिले हैं जिनमें लोग लूटपाट, नशे, व्यभिचार आदि की शरण ले रहे हैं।

विश्व की विभिन्न भाषाओं में महामारी या बड़े पैमाने पर रोगों के कारण होने वाली मौतों पर कथाएं

लिखी गई हैं। उन्हीं में एक कथा है ओ हेनरी की ‘आखिरी पत्ती’। यह कहानी अमेरिका के एक गांव में रह रही दो लड़कियों की कथा है। उनमें से एक को न्यूमोनिया हो जाता है तथा मरणासन्न है। वह कमरे के सामने की दीवार पर लगे पौधे की पत्तियों को गिरता देख रही है और मानती है कि आखिरी पत्ती गिरने के साथ वह भी दुनिया से चल बसेगी। उसकी सहेली उसकी बहुत सेवा करती है। घर के नीचे रहने वाले बूढ़े नाकाम पेंटर को जब यह मामला पता चलता है तो वह तेज बारिश की रात में सीढ़ी लगाकर दीवार

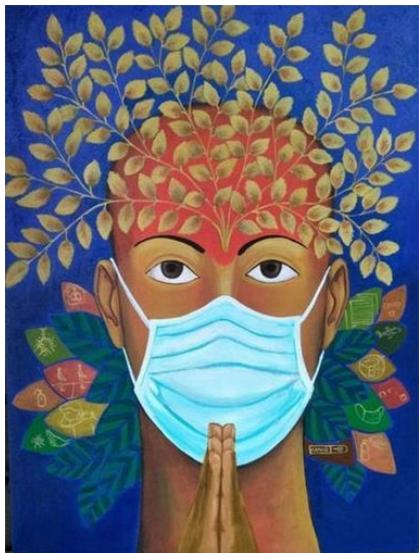
**वैश्विक तापमान बढ़ने के कारण जलवायु परिवर्तन और शहरों में बगैर किसी व्यवस्थित योजना के अराजक ढंग के विकास ने गांव के महत्व को फिर से स्थापित किया है।**

पर पत्ती को अपने ब्रश-रंग से बना देता है। वह मरणासन्न लड़की जब उस पत्ती को देखती है, वह उसे असली पत्ती ही समझती है। पत्ती जब तेज आंधी तृफान में नहीं झरती तो लड़की आशा से भरकर फिर स्वस्थ होने लगती है। उधर बारिश में भीगने के कारण उस पेंटर की मृत्यु हो जाती है।

कथाओं-उपन्यासों को पढ़कर पता चलता है कि भयंकर रोग, नाउमीदी तथा मौत के तांडव के दिनों में लोगों ने, खासतौर पर उन लोगों ने जिन्हें समाज का सबसे अनुपयोगी, निकम्मा वर्ग समझा जाता है, मानवीय करुणा के आलोकपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। रेणु ने ‘मैला आंचल’ में भी पूर्ण समर्पण की निश्छल भावना के साथ हैजे की महामारी में उल्टी व दस्त से मरते लोगों का इलाज करते डाक्टर प्रशांत का चरित्र अंकित किया है। गांव के लोगों को उनमें देवता दिखने लगता है, उसने बगैर फीस लिए लोगों के प्राण बचा लिए। साहित्य के ये उदाहरण इसलिए उपयोगी हैं ताकि यह महसूस हो

सके कि इस समय लोगों को मृत्यु के भय से बाहर आने के लिए भी प्रेरित करना है। लोगों को वैयक्तिक स्वार्थ छोड़कर एक मजबूत समाज की तरह इसका सामना करना होगा।

विगत ऐतिहासिक समय में ऐसी महामारी या व्यापक विस्थापन का सामना मनुष्य ने स्वयं के लिए नए किस्म की सामूहिकताओं का निर्माण करके किया है। वह जिस घबराहट या नर्वसनेस का शिकार होता है, उसका समाधान खोजने के लिए वह व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों के स्थान पर सामूहिक जीवन की ओर अधिक आकृष्ट होता है।



(4) भारत में गांव बनाम शहर की बहस काफी पुरानी है। लगभग सौ साल से अधिक समय से इस पर दार्शनिक ढंग से विचार किया जा रहा है। गांधी, अंबेडकर, विनोबा भावे, नेहरू सभी ने किसी न किसी प्रकार से इस पर विचार व्यक्त किए हैं। भारतीय गांवों के सौदर्य पर रीझने वालों ने भी गांवों की समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता का प्रदर्शन किया है। सुमित्रानंदन पंत ने ‘भारतमाता’ नामक कविता में अगर एक ओर भारतमाता को ग्रामवासिनी बताया, तो दूसरी ओर उसे ‘युग युग के तम में विषण्ण मन’ वाले चरित्र के रूप में भी अंकित किया था। पहले जहाँ भारतीय सभ्यता और धर्म को संदर्भ में रखकर ग्राम समाज के बारे में बहस होती थी, वहीं अब यह बहस अधिक ठोस और मूर्त हो गई है। वैश्विक तापमान बढ़ने के कारण जलवायु परिवर्तन और शहरों में बगैर किसी व्यवस्थित योजना के

अराजक ढंग के विकास ने गांव के महत्व को फिर से स्थापित किया है। वैश्विक महामारी के दौर में भी लोगों को लगा है कि अगर शहर में घर में ही बंद रहना है, तो गांव क्या बुरे हैं। शहर का मतलब स्वच्छंदता, आजादी, आमदनी, शिक्षा है। अगर शहर किसी आपदा के कारण इन्हीं चीजों को उपलब्ध न करा सकेंगे तो लोग गांव का रुख करने लगेंगे, जहाँ उन्हें उन्हीं समस्याओं का सामना करना पड़ेगा जिनसे बचने के लिए वे शहर की तरफ भागे थे। भारतीय समाज में अमानवीयता, क्रूरता या संवेदनहीनता की पहले से ही कमी नहीं है। ये सारी बुराइयां अन्य कारणों से भी उत्पन्न होती रहती हैं। केवल कोरोना को उनके लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता।

**भारत में कृषि को हतोत्साहित किया जाता रहा है और गरीब ग्रामीण जनों को शहरों की तरफ जाने के लिए प्रेरित किया जाता है।**

### (5) अर्थव्यवस्था अब लंबे समय

तक डावांडोल रहेगी, क्योंकि जिस मांग-खपत के नियम पर वह टिकी होती है उसमें मांग भी घटेगी और खपत के लिए उत्पादन भी। एक दुश्चक्र की अवस्था दिखेगी। विभिन्न किस्म की विदेशी वित्त संस्थाएं घोषणा कर चुकी हैं कि भारत की आर्थिक वृद्धि दर 1 फीसदी के आसपास रहेगी। केवल कृषि क्षेत्र में फसल का उत्पादन पहले की तरह बना रहेगा, बाकी समस्त क्षेत्रों में आर्थिक गिरावट की स्थिति रहेगी। विश्व में भूमंडलीकरण के समर्थक लगातार ऐसी आर्थिक योजना बनाते रहे हैं कि किस प्रकार से कृषि पर निर्भर आबादी को घटाया जा सके। लागों को शहरीकरण की दिशा में मोड़ा जा सके। इसके पीछे विचार यह भी रहा है कि कृषि पर आधारित जनसंख्या में जब कमी आएगी तो कृषकों की हालत भी सुधरेगी तथा उनकी सालाना आमदनी बढ़ेगी।

भारतीय कृषि का अध्ययन करने वाले विशेषज्ञों को यह बात अजीब लगती है कि जो कृषि देश की लगभग आधी जनसंख्या को रोजगार दे रही है, वह भारत की अर्थव्यवस्था में केवल 16 फीसदी का योगदान देती है। विश्व में खाद्यान्न की कमी नहीं है। अमेरिका में केवल 2 फीसदी जनसंख्या कृषि कार्य कर रही है, पर वह

इतना अनाज-दालें आदि उपजा रहा है कि दो अरब लोगों को खाना खिला सकता है। पचास देश कृषि न करें तो भी उनकी खाद्यान्न संबंधी आवश्यकताएं पूरी हो सकती हैं। इसलिए भारत में कृषि को हतोत्साहित किया जाता है और गरीब ग्रामीण जनों को शहरों की

तरफ जाने के लिए प्रेरित किया जाता है।

अमेरिका और यूरोप से प्रेरणा लेकर भारत में गांवों की कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था को जिस प्रकार से उपेक्षित किया गया है, उसके दुष्परिणाम के रूप में अपराध, शहरी समस्याएं तथा दरिद्रता बढ़े हैं। इस वैश्विक महामारी से शहरीकरण की प्रक्रिया को धक्का लगेगा। लोगों का पलायन गांव की ओर शुरू हो गया है जो आने वाले दिनों में और बढ़ेगा। मुझे एक चिंता यह सताती है कि अंतरराष्ट्रीय वित्त संस्थाएं चौपट होती अर्थव्यवस्था को उबारने के नाम पर जो कर्जे देंगी, उनसे भारत जैसे देशों की आर्थिक स्वतंत्रता को और आधात पहुंचेगा। वे ‘दिखावे परमारथ, सिद्ध करें स्वारथ’ वाले रास्ते पर चलेंगी।

(6) भारत में उदार संस्कृति की जड़ें भारतीय नवजागरण तथा स्वतंत्रता आंदोलन में मौजूद हैं।



भारतीयों की एक समूची पीढ़ी ने कलकत्ते से लेकर पुणे-मुंबई, मद्रास, लाहौर आदि शहरों में जिस प्रकार से पुरानी खड़ियों और धर्म की जकड़नों के खिलाफ संघर्ष किया, उसने भारतीय समाज को उदारता के लाभों के प्रति सजग बनाया। विवेकानंद जैसे वेदांती विचारक भी हिंदू धर्म में समुद्र न लांघने या गैरब्राह्मणों-शूद्रों के द्वारा भगवा वस्त्र पहनने पर लगी पाबंदी का मजाक उड़ाते हुए कह सकते थे- ‘मैं एक परंपरानिष्ठ हिंदू था ही कब?..मैं शूद्र हूँ और म्लेच्छ भी। मुझे इन सब बातों की चिंता कब रही?’ स्वतंत्रता आंदोलन में गांधीवादियों, समाजवादियों ने नए सामाजिक मूल्यों का जिस तरह विकास किया, उसने भी भारतीय समाज को आधुनिक बनने के लिए उदारता और संवैधनिक नैतिकता के रास्ते पर चलने

**भारतीय समाज इस समय  
भ्यानक अंतर्विरोध का  
शिकार है। हमने अपने  
संचार साधनों को पूरी तरह  
से संकीर्ण, छोटे, विकृत  
दिमागवालों के हवाले कर  
दिया है**

के लिए प्रेरित किया।

आधुनिक सेकुलर-लोकतांत्रिक विचारों ने पांरपरिक बहुलतावाद का न केवल नवीकरण किया, बल्कि उसमें शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के मूल्यों को भी समाहित किया। भारत की उदारता तथा राजनीतिक बहुलता लोकतंत्र के राजकीय प्रोजेक्ट का हिस्सा थी, जो अब संकटग्रस्त है।

कोरोना जैसी महामारी एक जैविक संकट खड़ कर रही है। राजनीतिक विचारधारा के बल पर इससे निपटा नहीं जा सकता है और वैज्ञानिक अनुसंधानों की ओर सभी की निगाहें टिकी हैं। यह भी सही है कि राजनीतिक-सामाजिक विचारधारा इस महासंकट के काल में भी प्रासंगिकता रखती है। जहां अधिक

लोककल्याणकारी तथा जनसुविधाओं के प्रति संवेदनशील सरकार होगी, वहां पर महामारी से होने वाले विस्थापन तथा बेरोजगारी की समस्या को सरकारें कम करेंगी। दवाई-अस्पताल की सुविधा, लोगों के नुकसान की भरपाई, आवागमन में मदद आदि से जुड़े काम वे ही समाज व सरकारें अधिक निष्ठा से करेंगी जो किसी लोकतांत्रिक विचारधारा से प्रेरणा प्राप्त करती हैं।

सोशल मीडिया तथा अखबारों-टीवी पर ऐसी छोटी सोच वाले नेताओं के बयान सामने आ रहे थे जो जनता की गरीबी का हमेशा उपहास उड़ात रहे हैं। कोई यह बयान दे रहा था कि जनता के पास शराब पीने के पैसे

हैं, ट्रेन का किराया देने के नहीं। कोई यह कह रहा था कि कुछ मुट्ठी भर मुस्लिम इस महामारी के मुख्य जिम्मेदार हैं। हमने अपने संचार साधनों को पूरी तरह से संकीर्ण, छोटे, विकृत दिमागवालों के



हवाले कर दिया है। भारतीय समाज इस समय भयानक अंतर्विरोध का शिकार है। इसके संचार-समाचार के साधन बहुत कट्टर-सांप्रदायिक हो चुके हैं, जबकि समाज अभी भी सहिष्णुता-उदारता के पक्ष में झुका हुआ है। भारतीय समाज अपनी विशाल संरचना में लोकतंत्र के मूल्यों की अभ्यस्त है, जबकि सत्ता में अधिक केंद्रीकरण की प्रवृत्तियां मौजूद हैं।

**(7)** समाज में भय-असुरक्षा और अवसाद वास्तव में चिंताजनक है। नेहरू ने अपनी पुस्तक ‘भारत एक खोज’ के अंतिम पृष्ठ पर लिखा है- ‘केवल वहीं लोग ठीक से जीवन जी सकते हैं जो मृत्यु-भय से मुक्त रहते हैं।’ उन्होंने अपनी पुस्तक के अंत में रूस के प्रसिद्ध समाजवादी लेखक निकोलाई आस्त्रोवस्की, जिनका एक

उपन्यास ‘हाऊ द स्टील वाज टेंपर्ड’ काफी चर्चित रहा था, का कथन भी उद्धृत किया है। इस कथन में आस्त्रोवस्की कहता है कि मनुष्य को इस तरह जीवन जीना चाहिए कि मृत्यु के क्षण में वह कह सके कि मैंने अपना जीवन और पूरी शक्ति को मानवता की मुक्ति के लिए समर्पित कर दिया। मृत्यु-भय को न पालना तथा मानवता की मुक्ति के लिए समर्पण- ये दो मूल्य किसी भी महान राजनेता-क्रांतिकारी को प्रेरित करते हैं। इन्हीं के बल पर वह लोगों को भी भय-असुरक्षा से ऊपर उठने के लिए उत्साहित कर सकता है।

**दुःख और भय केवल संघर्ष करने से ही दूर होते हैं, मसीहाओं या देवताओं की प्रतीक्षा करने से नहीं।**

हम वर्तमान में जिस संकट से गुजर रहे हैं उसमें आम जनता, खासतौर पर गरीबी से जूझने वाला वर्ग बुरी तरह से पराजित और असहाय दिख रहा है। करोना के विरुद्ध जारी देशव्यापी लड़ाई की सबसे अधिक

कीमत वे ही चुकाने जा रहे हैं। देश की हालत अमावस्या की काली रात जैसी हो रही है। ब्रिटिश काल में जब लंबे-लंबे अकाल में लोग मरते थे तो वायसराय कहता था कि अंग्रेज सरकार महान है, क्योंकि अन्य प्रांतों में तो लोगों को शानदार भोजन मिल रहा है। लगभग वही हालत वर्तमान में है। वर्तमान में भारतीय राजनीति और सत्ता दुष्ट गठबंधनों तथा व्यक्ति पूजा पर आधारित हो चुकी है। वह न्यूनतम राजनीतिक नैतिकता का भी निर्वाह नहीं कर पा रही है। देश की कई कंपनियां आर्थिक तौर पर दिवालिया होने के कगार पर हैं, पर देश की राजनीति तो मूल्यों-आदर्शों की दृष्टि से भयानक दिवालियापन प्रदर्शित कर रही है। राज्य का जनता से संवाद कम हो चुका है तथा केवल विदेशी पूंजी से उसका गठबंधन मजबूत हुआ है। ताजा उदाहरण रेलवे को

निजी हाथों में सौंपे जाने की शुरू हो चुकी प्रक्रिया है।

इसलिए चौतरफा भय-असुरक्षा से मुक्ति के लिए जनता को अपने भीतर से ऐसा सच्चा नेतृत्व

विकसित करना होगा जो जनता के दुःखदर्द को आंकड़ों, सूचनाओं, मतपत्रों के समीकरण में न देखे, बल्कि वह जनता को संघर्ष करना सिखा सके। दुःख और भय केवल संघर्ष करने से ही दूर होते हैं, मसीहाओं या देवताओं की प्रतीक्षा करने से नहीं!



दूर होते हैं, मसीहाओं या देवताओं की प्रतीक्षा

करने से नहीं!

403, सुमित टॉवर, ओक्स हाइट्स, सेक्टर-86,  
फरीदाबाद, हरियाणा-121002 मो.9711312374

- प्रकाशित रचनाओं से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है
- ⑤ सर्वाधिकार सुरक्षित
- वागर्थ से संबंधित सभी विवाद कोलकाता न्यायालय के अधनी होगा।

**प्रबंध :** अमृता चतुर्वेदी

**वितरण व अन्य कार्य :** एस.पी. श्रीवास्तव, सूर्यदेव सिंह, अशोक बारीक, बैद्यनाथ कमती, खेत्राबासी बारीक, संतोष सिंह, प्रदीप नायक, प्रेम नायक।



# कोराना माहामारी का मूल कारण प्रकृति से छेड़छाड़ और जलवायु परिवर्तन है मनुष्य की भूख जानवर की भूख से ज्यादा खतरनाक होती है

## हितेंद्र पटेल

रवींद्र भारती विश्वविद्यालय  
में इतिहास के सहायक  
प्रोफेसर। संप्रति फेलो,  
भारतीय उच्च अध्ययन  
संस्थान, शिमला।

(1) 1918 के फ्लू में चार करोड़ से ज्यादा लोग मरे थे। सीडीएस (अमरीका) के आंकड़े के अनुसार दुनिया की एक तिहाई आबादी - पचास करोड़ - इसके इन्फेक्शन का शिकार हुई थी। पाँच करोड़ लोग मरे थे। सिर्फ अमरीका में ही छह लाख पचहत्तर हजार लोग मारे गए थे। भारत में भी इसका व्यापक असर हुआ था। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने उस समय की भयावहता पर लिखा है, जिससे हिंदी जगत परिचित है।

मुद्दा संख्या का नहीं है। पहले की किसी महामारी और आज की इस महामारी में एक अंतर है। इस महामारी का इलाज तो है ही नहीं। इसके इलाज के लिए वैक्सीन बनाने का वैज्ञानिक आधार भी नहीं है। सिर्फ अनुमान पर इलाज किया जा रहा है। पहले जो संकट आए वे जानवरों में फैले। पहले गाय से बीमारी फैली। मैड काऊ के नाम से यह बीमारी हुई। लाखों गायों को मार दिया। फिर मुर्गे से यह भय आया, रातोंरात लाखों मुर्गों को मार दिया गया। एक रात में दस लाख मुर्गों को मार डालने का काम किया गया। अब यह आदमी से आदमी में फैलने लगा। अब क्या करें? रोग को सीमित करना

और स्वास्थ्य को सुरक्षित करने का मेडिकल साइंस का ज्ञान यहाँ बेकार हो गया है। हर बीमारी का इलाज है या हो सकता है और जो चिकित्सा करने का खर्च उठा सकते हैं उनको यह उपलब्ध होगी, यही नियम था। अब इस बीमारी में दुनिया का सबसे सुरक्षित कोना - अमरीका दुनिया के सबसे असुरक्षित कोने - अफ्रीका से अधिक खतरनाक माना जा रहा है! पता चला है कि नौ हजार अमरीकी नागरिकों में से नब्बे भी इस दौर में भारत से अमरीका लौटने को तैयार नहीं हुए। उन्होंने भारत को सुरक्षित समझा।



इस समय असुरक्षा बोध बढ़ गया है। अधिकांश लोग घरों में बंद हैं इसलिए मरने वालों की संख्या सैकड़ों में है। सामान्य अवस्था

में यह हजारों में होती। अवस्था पहले से भयानक है। यह युद्ध में घिरी जनता के मृत्यु-भय जैसा है। हम चुपचाप, सहमे हुए शत्रु के आने के भय से भयभीत जीवन जी रहे हैं। कुछ मायनों में युद्ध की स्थिति से भी बदतर है। युद्ध में तो हम शत्रु को जानते हैं और अपनों के साथ मिलकर लड़ते हैं। यहाँ यह हाल है कि कोरोना के मरीज की मृत्यु के बाद उसके घरवाले उसे लेकर घाट जाने की स्थिति में नहीं हैं। देश के एक बड़े परिवार की स्त्री अपने अभिनेता पिता की मृत्यु के बाद उसे देखने दिल्ली से बंबई नहीं जा पाई।

कहा जा सकता है कि देश में अचानक लॉकडाउन के सरकारी निर्णय को स्वीकार करने की सूझ बूझ जनता ने दिखलाई, इससे लाभ हुआ है।

**(2)** इसमें किसी प्रकार की दुविधा नहीं होनी चाहिए कि कोरोना महामारी का मूल कारण प्रकृति से छेड़छाड़ और जलवायु परिवर्तन है। इस ओर पर्यावरण विशेषज्ञों ने कम से कम तीस वर्षों तक चीख-चीख कर ध्यान दिलाया है। उसके पहले भी लोगों ने चेतावनी दी है। खतरनाक वायरसों के बारे में रिसर्च लगातार हुए हैं। ये सभी चीजें पब्लिक डोमेन में हैं।

**(3)** कोरोना जनित मृत्यु - भय ने लोगों को थोड़े समय के लिए विवेकशील बनने का सुयोग दिया है। लोग बाहर की दुनिया में इतने रमे हुए थे, भटके - खोए हुए थे कि घर और आसपास के लोग उनको कम सुहाते थे। घर में रहने का अभ्यास ही छूट-सा गया था। अब घर में रहने की बाध्यता है और घर के अन्य सदस्यों को

झेलना ही पड़ेगा! एक अर्थ में यह परिवार की वापसी का समय है। आधुनिक युग में परिवार का स्वरूप बदल गया था। पहले पति पत्नी और बच्चे के अतिरिक्त परिवार के सदस्य नए परिवार से अलग हुए। धीरे- धीरे इसमें भी और टूटन हुई। बूढ़े माँ-बाप बोझ बने और पति और पत्नी भी

**बड़े लेखक की उक्ति है कि  
बड़े शहरों में रहना  
आसान होता है, क्योंकि  
आप बरसों यह जाने बिना  
कि आप मर चुके हैं, जी  
सकते हैं।**

बस आगे बढ़ने में सहायक के रूप में ही स्वीकृत हुए। जहां आगे बढ़ने में बाधा महसूस हुई वहां भी रिश्ते टूटने लगे, घिसटने लगे। अपनी महत्वाकांक्षा पूर्ति करते हुए पुरुष और स्त्री बाहरी दुनिया के लिए परिवार की अनदेखी करते रहे हैं। अब शायद अकल आए कि अपने घर और अपने लोग भी बहुत जरूरी हैं।

इस दौर में लोग शहर छोड़कर गांव भागे हैं, यह देखिए। इस अनुभव के बाद गृहिणी के भरोसे चलते घर में गृहिणी के महत्व को लोग समझें। नौकर-चाकर के

बिना चलते घर में स्त्री ही घर को घर बनाए रखती है, यह और भी स्पष्ट है। अब शायद घर का खाना और अपना गाँव उतने बेकार न लगें!

(4) अमानवीयता शहरी जीवन का हिस्सा है। बड़े लेखक की उक्ति है कि बड़े शहरों में रहना आसान होता है, क्योंकि आप बरसों यह जाने बिना कि आप मर चुके हैं, जी सकते हैं। आस-पास से कट कर जीते हुए शहरी नागरिक की तुलना में गाँव का आदमी कूर दिखता है, क्योंकि

गांव में कूरता की सामूहिकता को कैमरे की आंख पकड़ सकती है और उसकी बीभत्सता की नुमाइश ऐसे कर सकती है जैसे वे देहाती किसी दूसरे



ग्रह के प्राणी हों। शहर की स्ट्रक्चरल कूरता को समझने के लिए साहित्यकार की आंख चाहिए, क्योंकि शहर की कूरता बहुत सिस्टेमेटिक होती है।

(5) निश्चित मानिए कि यह दुनिया अब नहीं बदली तो नष्ट हो जाएगी। इतिहास का चक्का उलटा धूमेगा, जो इस समय से पहले असंभव-सी बात लगती थी। वैश्विकता पर बल थोड़ा कम होगा और स्थानीयता को महत्व मिलेगा। आधुनिक मस्तिष्क ने हमें फैलने के लिए, संयंत्र जुटाने के लिए तैयार किया, पर सामूहिकता और प्रकृति के साथ तादात्प्य बिठाकर चलना नहीं सिखलाया। सत्रहवीं शताब्दी में वैज्ञानिक दृष्टि का जो पाठ हमने सीखा, उसके साथ चलते हुए हम आज इस अवस्था में आए हैं।

अर्थव्यवस्था को बदलना ही होगा। आम आदमी

बहुत असुरक्षित जीवन जी रहा है। समाज सिर्फ आंकड़ों में बेहतर हुआ है। वस्तुतः गैर-बराबरी बढ़ी है। असुरक्षा और गैर-बराबरी और बढ़ेगी, अगर समाज के संसाधनों के सम्यक प्रयोग और बेहतर वितरण पर ध्यान नहीं दिया गया।

(5) जिस तरह डाक्टरों, नर्सों, सफाई कर्मचारियों, पुलिस-कर्मियों और समाज-कर्मियों ने अपनी जान की परवाह न करते हुए मदद की है, उसको देखकर हमें उनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। बैंकों ने और कई सरकारी विभागों ने भी काम किया। हम जो

**इतिहास के विद्यार्थियों  
को यह याद रखना  
चाहिए कि हर महामारी  
समाज के नजरिए में  
परिवर्तन लाने का एक  
मौका बनाती है।**

सब्जी और जरूरी सामान पाते हैं, उसके पीछे भी लोग हैं। एक उदाहरण देता हूँ। मेरे गांव में मेरे एक भाई ने बताया कि उसकी कंपनी की गाड़ी उसे लाने और छोड़ने के लिए आती है। मैंने उसे टोका और कहा कि तुम ऑफिस जाना बंद

करो। उसने कहा - अगर कंपनी काम नहीं करेगी तो सेनेटाइजर और मास्क की जो इतनी जरूरत है उसे कैसे पूरा किया जाएगा? उसकी फैकट्री यही काम करती है। उसने कहा - खतरा तो है, लेकिन यह काम जरूरी है।

ऐसे और भी बहुत से लोग हैं। ये लोग भी इंसान हैं। उनको भी इंफेक्शन का उतना ही डर है, जितना और किसी अन्य को।

(6) अब बड़े लोग और उनके साथ स्ट्रक्चरली खड़े मध्य वर्ग ज्यादा खतरे में होंगे। गैर-बराबरी का एक बड़ा कारण है असमान वितरण और इसकी अनदेखी। मध्य वर्ग अपनी आकंक्षाओं के कारण

उच्च वर्ग से बंधा हुआ है। अब तक नौकरी करनेवालों को लाखों देने की व्यवस्था इसलिए है, क्योंकि उनके सहारे उच्च वर्ग वाले करोड़ों-अरबों कमाते हैं। जब बड़े लोगों की कमाई बंद होगी या कम होगी तो इसका असर नौकरी करने वालों पर पड़ेगा। अभी तक लोग इस गैर-बराबरी की बात नहीं करते कि सरकारी नौकरी करने वाले अच्छी तनखाह पाते हैं और दस-बारह घंटे बाजार में काम करने वाला दस से पंद्रह हजार रुपए मासिक पाता है। संक्रमण की बढ़ती रफ्तार ने बहुतों की असुरक्षा और अधिक बढ़ा दी है। इससे आक्रोश बढ़ेगा, तय है।



इतिहास के विद्यार्थियों को याद रखना चाहिए कि हर महामारी समाज के नजरिए में परिवर्तन लाने का एक मौका बनाती है।

महामारी ने बहुत समृद्ध और शक्तिशाली राज्यों को नष्ट किया है। प्राचीन यूनान के एथेंस राज्य का पतन प्लेग महामारी से हुआ था। इसका विवरण थूकिडिस ने अपनी पुस्तक- ‘हिस्ट्री ऑफ पेलोपोनेशियन वार’ में दिया है। उसी प्लेग में महान पेरिक्लीज भी मारे गए थे। उनके एक ‘फ्यूनरल ओरेशन’ को भी देखना चाहिए।

दुनिया इन महामारियों से जूझती हुई आज इस जगह पर खड़ी हो गई है कि उसके आगे राह नहीं दिखलाई पड़ती।

ज्ञान और विज्ञान के बीच अंतर है। यह अंतर रामकृष्ण ने विवेकानन्द को समझाया था और ‘स्वयं’ और ‘सबके’ बीच में ‘सबके’ को अधिक महत्व देने के लिए कहा था।



इसे ही विज्ञान का क्षेत्र बनने की बात थी। वह नहीं हुआ। इसलिए अगर कोरोना से कुछ सीखना है तो यही कि विज्ञान गलत दिशा में गया और जिसने आधुनिक विश्व का कॉमनसेंस इतिहास द्वारा रचा उसने

विज्ञान की सफलता का डंका तो बजाया, लेकिन उसकी मूलभूत समस्या को लोगों के सामने नहीं रखा। मनुष्य की भूख जानवर की भूख से ज्यादा खतरनाक होती है, क्योंकि यह सर्वग्राही होती है। उस भूख के विस्तार को ही विकास के नाम पर चलाया गया जो फेल हो चुका है।

दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि मनुष्य को प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व में आना होगा। उसे मन और शरीर के विज्ञान जनित बंटवारे पर दोबारा सोचना होगा।

कोरोना ने हमें ठहर कर सोचने का एक मौका दिया है।

फेलो, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडवार्स्ड स्टडीज, राष्ट्रपति निवास,  
शिमला-171005 मो.8953479828

# कहानियाँ

दिनेश कर्नाटक, गोवर्धन यादव



## दिनेश कर्नाटक

युवा लेखक और शिक्षाविद्।  
अद्यतन कहानी संग्रह, 'मैकाले  
का जिन्न'। उपन्यास 'फिर वही  
सवाल'। राजकीय इंटर कालेज,  
नैनीताल में प्रवक्ता।

## ख्रोज

दिनेश कर्नाटक

राजधानी का पत्रकार अपनी रिपोर्ट निपटाकर जब ऑफिस से शाम के धुंधलके में घर की ओर लौटता तो उसका ध्यान दीगर चीजों के बजाय समय से घर पहुँचने पर होता। न कहीं बाइक रोककर कुछ खरीदने और न ही किसी से मुलाकात का मन होता। थकान उस पर इस कदर हावी होती कि घर पहुँचकर एक बढ़िया-सी चाय पीकर कुछ देर आराम करने की बात दिमाग में रहती। सड़क के दाँ-बाँ लोगों को देखने के बजाय उसका ध्यान सीधे सड़क पर आने-जाने वाली गाड़ियों पर रहता। मगर उसके गांव से राजधानी को विभाजित करने वाले पुल पर आकर उसकी नजरें महेश को ढूँढ़ने लगतीं।

हालांकि वह जानता था कि यह महेश के दिखाई देने का समय नहीं है। वह सुबह के समय ही नजर आता था। यूँ अब वह महेश को पहले जैसी शिद्दत से याद नहीं करता था, मगर पिछले कुछ दिनों से वह फिर से उसे आकर्षित करने लगा। उसे महेश में कई तरह की संभावनाएँ नजर आने लगीं। लग रहा था किसी न किसी रूप में वह उसका उपयोग कर सकता है। कहाँ-कहाँ उपयोग हो सकता है, यह उसके दिमाग में स्पष्ट नहीं था। एक बात साफ थी कि उस पर सोशल मीडिया पर जोरदार पोस्ट लिखा जा सकता है। उसे यकीन था, उसका किरदार लोगों को अपनी ओर आकर्षित करेगा।

महेश को देखकर अब उसके भीतर पहले की तरह किसी प्रकार के अफसोस, परेशानी या बेचैनी

का भाव नहीं उठता। उसने अपनी आँखों के सामने ही उसे सभी एहसासों के पार जाते देखा था। अब भी जब वह घर से प्रेस जाता तो पुल के पास उसे महेश हमेशा की तरह कुछ ढूँढता हुआ नजर आता। महेश के दोनों हाथ पैंट को रोकने की कोशिश में तैनात होते। साफ दिखता कि अगर हाथ हट जाएंगे तो पैंट नीचे गिर जाएंगी। पैंट के पोंचे घिस्टटे रहते। कपड़े वही होते—बासी, पुराने, जर्जर तथा मैले। जैसा महेश था वैसा ही। चेहरा संवेदना तथा जीवंतता खो चुका था और किसी खास समय में ठहरकर वहीं का हो गया था।

हर बार महेश एक ही कोण में नजर आता। उसका सिर कौवे

की तरह आगे को  
झुका होता। वह  
बड़ी तल्लीनता से  
कुछ खोजता हुआ  
आगे को चलता  
रहता। वह पुल के  
आस-पास के दो  
सौ मीटर के दायरे



पर ही चीजों को खोजता। न उससे आगे जाता और न पीछे को लौटता। बस, वहीं पर परिक्रमा करता। करीब दस साल से इसी तरह वह किसी चीज को खोज रहा था। निरंतर। सर्दी, गर्मी और बरसात की परवा किए बगैर। चीज उसे मिल नहीं रही थी। उसे पूरा भरोसा था कि वह वहीं कहीं थी और कभी भी उसे मिल सकती थी। इतने वर्षों से हर रोज मेहनत करने के बावजूद उसकी तत्परता और एकाग्रता में कोई कमी नहीं आई थी।

शुरू-शुरू में जब उसने महेश को पुल के आस-पास कुछ खोजते हुए देखा तो उसकी बिगड़ी दशा का अंदेशा हो गया था। फिर यह सोच कर कि उससे बातचीत कर उसकी परेशानी को समझा जाए, एक दिन उसके आगे मोटरसाइकिल रोक कर आवाज दी—‘महेश, क्या ढूँढ रहा है?’

महेश ने तुरंत कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। एक बार चेहरा उठा कर उसकी ओर देखा, फिर जैसे जानवर और इंसान के बीच होता है, उसके होने का उसके लिए कोई अर्थ नहीं था। वह सिर झुका कर अपनी खोई हुई चीज खोजने लगा। और वह उसे जाते हुए देखता रहा। उसकी समझ में आ गया था कि महेश अब किसी

दूसरी दुनिया का बाशिंदा हो चुका है।

धीरे-धीरे महेश का पुल के आस-पास कुछ खोजना, उसके लिए रोज का तय दृश्य बन गया, जिसमें कुछ लोग तथा कुछ चीजें अनिवार्य रूप से होती हैं।

वह एक छोटे राज्य की बड़ी राजधानी के बड़े अखबार का पत्रकार था। हर रोज बड़े-बड़े लोगों से मिलता। राजनीति की दो या तीन जबरदस्त कहानी लिखता। उन्हें फेसबुक पर साझा करता और प्रशंसकों की प्रतिक्रियाओं को स्वाभाविक मान कर चलता जो ‘वाह, कमाल का लिखा, अद्भुत, शानदार, छा गए’

के रूप में होती। उसे अपनी काबिलियत का अंदाजा था। इसलिए अपने प्रशंसकों की प्रतिक्रियाओं के लिए वह उन्हें धन्यवाद कहना जरूरी नहीं समझता था। वह समझता था, जिस मुकाम पर वह है, वहां पर लोगों द्वारा उससे निकटता बनाने के लिए अपनी याद दिलाना स्वाभाविक है।

इसके साथ ही उसे सामान्य बने रहना तथा सामान्य लोगों के साथ घुलना-मिलना पसंद था। उसे गर्व था कि वह एक साथ जीवन के

दो विपरीत छोरों के लोगों के साथ सहजता से संबंध स्थापित कर सकता है। कभी वह किसी निर्माणाधीन बिल्डिंग के सामने सुस्ता रहे मजदूरों के बीच चला जाता और कभी किसी सरकारी स्कूल के परिसर में खेल रहे बच्चों के बीच जाकर सेल्फी खींचता। दूसरी ओर, कभी वह राज्य के मुख्यमंत्री, कैबिनेट मंत्री या देश के प्रधानमंत्री के साथ खींची गई सेल्फी फेसबुक पर पोस्ट करता। देखते ही देखते दो-तीन दिनों में उसे हजार से डेढ़ हजार लाइक और डेढ़-दो सौ कमेंट मिल जाते। वह मन ही मन मुस्कराता। उसे लगता यह तो होना ही है। मेरे पास चीजों को उस एंगल से पकड़ने या देखने की काबिलियत है जो हरेक में नहीं होती।

चलिए महेश से परिचित होते हैं। दरअसल हमारा खोजकर्ता महेश, रमेश का छोटा भाई है, जो राजधानी के इस बड़े पत्रकार के छोटे-से गांव में नाई की दुकान चलाता है। वह उसके गांव का

सबसे पुराना नाई है। अब गांव के चार कोनों में नाइयों की चार दुकानें हैं। एक समय रमेश की अकेली दुकान होती थी। कहने की जरूरत नहीं कि वह रमेश नाई के जीवन का स्वर्णकाल था। उन दिनों रमेश गांव वालों का रमेश दा हुआ करता था। पहले रमेश दा गांव के छोटे-से बाजार के ऐन चौराहे पर अपनी दुकान चलाया करता था। उन दिनों आज का खोजकर्ता महेश रमेश की सहायता के लिए दुकान पर आता और बड़ी निष्ठा से अपना काम किया करता। सुबह दुकान खुलने पर झाड़ू लगाना, धारे से पानी लेकर आना, बच्चों के बाल काटना। रमेश उससे जो कहता वह बगैर कुछ कहे मुस्कराते हुए करता जाता।

बड़ा पत्रकार और महेश एक ही उम्र के थे। कभी जब दुकान में काम नहीं होता तो महेश भी पत्रकार और उसके



दोस्तों के साथ क्रिकेट खेला करता। महेश यहाँ भी मुस्कराता रहता। आउट होता तो मुस्कराता। बॉल के पीछे दौड़ता तो मुस्कराता। कोई उसे गाली देता तो मुस्कराता। कोई कुछ बोलता तो मुस्कराता। कोई न बोलता तो मुस्कराता। बाद में उसकी मुस्कराहट बढ़ती ही चली गई थी। इतनी कि उसकी मुस्कराहट देख कर सामने वाला भी शरमाने लगता। मुस्कराहट के ही चक्कर में बाद में उसका दुकान पर आना भी बंद हो गया था।

रमेश ने गांव में अपने स्वर्ण काल की बदौलत सिर्फ इतनी तरकी की कि बाजार से हटकर मुख्य सड़क के किनारे लकड़ी का एक छोटा-सा खोमचा बना लिया। यहाँ भी उसका अच्छा

दौर चलता रहा। वह लोगों के सुख-दुख में शामिल होता। गांव वाले उसे नामकरण, जनेऊ तथा शादी में निमंत्रण देते। वह दिन भर लोगों के बाल काटता, दाढ़ी बनाता और शाम को किसी के द्वारा खुशी-खुशी दी हुई फल-सब्जी-दूध-दही आदि लेकर साइकिल से शहर के उस मुहल्ले की ओर चला जाता, जहाँ से वह हर रोज आया करता था। यहाँ यह भी जोड़ना जरूरी है कि उसे किसी के खेत या आंगन में लौकी, खीरा, कट्टू या तुरई लगी हुई नजर आती तो वह बेझिझक दुकान में भिजवाने को कह देता। गांव भर में उसका डंका बजता। उसका होना गांव तथा लोगों के सही-सलामत होने का सबूत होता।

## रमेश दा इधर वालों के बाल काटने के दौरान उधर वालों को गाली देता और उधर वालों के बाल काटने के दौरान इधर वालों को गाली देता। सोचता, इस तरह उसकी पीड़ा लोगों तक पहुंचेगी।

पीढ़ियों से काम कर रहा था, एक अनजान नाई को जगह दे दी। यह उसके लिए असहनीय था।

रमेश दा इस बात के लिए गांव के हर व्यक्ति से नाराज था और दुकान पर आने वालों को ‘उल्टा-सुल्टा’ सुनाया करता था। मगर लोगों के लिए यह बात कोई खास महत्व नहीं रखती थी। जो लोग उसके देर से दुकान पर आने या किसी दिन दुकान न खोल पाने पर ‘मॉडर्न बारबर’ में बाल कटवा आते थे, उन्हें वह पूरे अधिकार से गरियाता ‘सालो, अपनी माँ के खसम के वहाँ हो आए’। उसकी बात पर लोग हँस देते। उन्हें लगता, रमेश दा मजाक कर रहा है। उसका सबके साथ हँसी-मजाक का रिश्ता था। सभी उसे अपना समझते हुए खुलकर मजाक किया करते थे और वह भी जो मन में आता बोल दिया करता था। वे ‘मॉडर्न बारबर’ दुकान खोलने को सामान्य बात मानकर चल रहे थे और रमेश दा की मनःस्थिति को नहीं समझ रहे थे।

धीरे-धीरे लोगों को लगाने लगा, रमेश दा मजाक नहीं करता है, बल्कि जानबूझकर गाली देता है। गांव के उस छोर के लोगों के लिए ‘मॉडर्न बारबर’ नजदीक भी था और उसके यहाँ लोहे की ऊँची गढ़दार शहरों जैसी कुर्सी, नए आईने, बिजली से चलने वाली मशीनें तथा सबसे बढ़कर था उसका व्यवहार। वह ग्राहकों के आने पर स्वागत में बिछ-सा जाता था। लोग रमेश दा से अपना पुराना रिश्ता समझते थे। इसलिए नए वाले के यहाँ अच्छी सुविधा मिलने के बावजूद, बार-बार उसके वहाँ जाते। रमेश दा उनके बालों को देखते ही समझ जाता कि ये जनाब उसके शत्रु के वहाँ से बाल कटा कर आए हैं। धीरे-धीरे रमेश दा की गांव वालों से नाराजगी बढ़ने लगी। वह गांव वालों को गंदी-गंदी गालियाँ देने लगा। गांव के दो-तीन लड़कों ने तो उसकी पिटाई भी कर दी थी। धीरे-धीरे गांव के दूसरे छोर के लोगों ने उसके यहाँ जाना छोड़ दिया।

पत्रकार अभी भी रमेश दा के पास जाता। रमेश दा इधर वालों के बाल काटने के दौरान उधर वालों को गाली देता और उधर वालों के बाल काटने के दौरान इधर वालों को। सोचता, इस तरह उसकी पीड़ा लोगों तक पहुंचेगी। मगर लोग उसका दर्द समझने के बजाय उसकी गालियों को अपना अपमान समझते। अब पत्रकार को भी पहले की तरह उसकी बातों में रस नहीं आता था। बल्कि उसकी गालियाँ बुरी लगने लगी थीं। हालांकि वह उन गिने-चुने लोगों में से था, जो उसकी बेचारगी को समझते थे। वह लोगों को उसकी गालियों की वजह समझता। मगर रमेश दा में कोई बदलाव होने के बजाय उसकी गालियों



**उसकी फैंड लिस्ट में राज्य की  
दोनों मुख्य पार्टियों सहित  
विभिन्न पार्टियों के कार्यकर्ता,  
कर्मचारी संघों के नेता,  
लेखक, कलाकार, सामाजिक  
कार्यकर्ता शामिल थे। वह  
कभी किसी एक पार्टी की  
बुराई करने के बजाय दोनों में  
संतुलन बना कर चलता था।**

---

के बढ़ते जाने के कारण वह सोचने लगा कि मैं भी फिजूल में इसकी गालियाँ क्यों सुनूँ। कई बार उसकी जली-कटी बातों को सुन कर उसका भी मन करता कि सामने का लट्ठ उठा कर उसके सिर पर मार दे। पर रमेश दा गांव का आदमी था। उम्र में बड़ा था। उससे बात करने में डर लगता था। उस रिश्ते से उसे न मारा जा सकता था, न पलट कर गाली दी जा सकती थी।

बाद में महेश गांव के बजाय शहर की सड़कों पर हँसते हुए नजर आने लगा था। कोई उससे कुछ पूछता तो वह पूछने वाले की ओर हँसते हुए देखता। फिर आगे बढ़ जाता। इसी दौरान रमेश दा से सौ कदम की दूरी पर पप्पू भाई ने ‘बांबे बारबर’ के नाम से नई दुकान खोली। पप्पू भाई के यहाँ भी शुरू में कोई नहीं गया। लेकिन जो एक बार गया, उसे बिल्कुल अलग अनुभव हुआ। वह झुककर आइए भाई साहब, बैठिए भाई साहब कहता। उसके यहाँ भी कुर्सी से लेकर हर चीज नई थी। टेप पर शानदार गीत बजते। पत्रकार को जिस एक चीज ने रमेश दा से दूर कर दिया, वह थी कैंची। रमेश दा की कैंची बाल काटने के दौरान निर्दयता से बालों को नोचती, जबकि पप्पू भाई की कैंची ‘कच्च-कच्च’ की सुरीली आवाज करते हुए बालों को ऐसे काटती जाती, गोया बाल काटने के बजाय उन्हें सहलाया जा रहा हो। बाद में वह तबीयत से उसके सिर की मालिश करता। मालिश के पैसे भी लेने को तैयार नहीं होता था। पत्रकार को सिर की मालिश जरूरी लगने लगी और वह पप्पू भाई का पक्का गाहक हो गया। पत्रकार ही नहीं, धीरे-धीरे सभी स्थानीय लोग पप्पू भाई के बांबे बारबर और इरशाद के मॉडर्न बारबर के ग्राहक हो गए।

फिर ऐसी स्थिति आ गई कि एक-दो को छोड़ कर रमेश दा के वहाँ गांव के सभी लोगों ने जाना छोड़ दिया। रमेश दा आता, दुकान में सफाई करता। फिर बैठ जाता। कोई भूला-भटका ही उसकी दुकान की ओर जाता। जो लोग दूर से ‘रमेशदा नमस्कार’ कहा करते थे, अब वे भी उसे नजरअंदाज करते हुए आगे बढ़ने

लगे। लोग अपने नामकरण तथा शादियों में भी पप्पू भाई को ही बुलाने लगे। चिढ़ा हुआ रमेश दा अपने यहाँ आने वाले ग्राहकों से ऐसे लोगों की बुराई करते हुए कहता—‘कैसा समय आ गया। लोग अपना धर्म भी भूल गए।’ हिंदू-मुस्लिम पर यकीन न करने वाले लोगों तक रमेश दा की गालियाँ पहुँचतीं तो वे भी उससे दूर होते जाते। अलबत्ता भेदभाव को मानने वाले लोग रमेश दा को बुलाते और रमेश दा बाल कटाई और भेंट में मनमर्जी की रकम के लिए जिद पकड़ लेता। रमेश दा की जिद देख चुके लोग शहर से तय करके किसी हिंदू नाई को बुला लेते मगर रमेश दा को नहीं बुलाते। इस तरह रमेश दा ने धीरे-धीरे न सिर्फ अपने ग्राहक खोए, बल्कि लोगों के दिलों से भी उत्तरता चला गया। अब वह ग्यारह-बारह बजे दुकान आता और दो-तीन बजे घर चल देता।

अब आप समझ चुके हैं कि राजधानी के पत्रकार का संबंध एक छोटी जगह से है और एक छोटी जगह से निकलकर वह बड़े रंगमंच का कलाकार बन चुका था। अपनी खास तरह की खबरों से न सिर्फ पाठकों के बीच, बल्कि वह अपने प्रबंधनों का भी चहेता बन गया था। हर रोज वह ऐसे मुद्दे पर रिपोर्ट करता कि ऑफिसों, घरों तथा नुकङ्गों पर बैठे लोग उसकी खबरों की चर्चा करने लगते। उसके नए-नए आइडियाज से प्रतिक्रिया सकते में पड़ जाते। रात 12 बजे अस्पतालों तथा चौराहों, थानों में तैनात स्टाफ की जमीनी हकीकत तथा दिन के ठीक 10 बजे विभिन्न ऑफिसों की वस्तुस्थिति वाली उसकी रिपोर्टें ने लोगों के बीच मीडिया के प्रति भरोसा पैदा कर दिया था। इसी बजह से बड़े-बड़े

नौकरशाहों से उसका अच्छा-खासा परिचय हो गया था।

जितना नवोन्मेषी वह अपनी पत्रकारिता के लिए था, उतना ही ध्यान वह सोशल मीडिया में भी दिया करता था। उसकी फैंड लिस्ट में राज्य की दोनों मुख्य पार्टियों सहित

विभिन्न पार्टियों के कार्यकर्ता, कर्मचारी संघों के नेता, लेखक, कलाकार, सामाजिक कार्यकर्ता शामिल थे। वह कभी किसी एक पार्टी की बुराई करने के बजाय दोनों में संतुलन बना कर चलता था। वह जानता था, उसके पोस्टों को ध्यान से देखा जाता है, इसलिए सत्ता पक्ष के अच्छे लगने वाले कार्यों की तारीफ कर दिया करता। जब जिसकी सरकार



होती, उसका हो जाता। इसका लाभ वह जानता था। वह उन्हीं बातों पर बोलता था, जिनमें विवाद की गुंजाइश नहीं होती। इस तरह वह अपने को निष्पक्ष दिखाता और उसकी साख स्वतंत्र किस्म के पत्रकार की बन चुकी थी।

वह चाहता था, उसके फेसबुक पोस्ट पर लाइक की संख्या 1000 से ऊपर होनी चाहिए। 500 लाइक को वह अपना अपमान समझता। वह जानता था, पोस्टों की विलक्षणता ही लोगों को पोस्ट पर ठहरने और पढ़ने को प्रेरित करती है। मगर धीरे-धीरे उसके लाइक कम होते जा रहे थे। इसी दौरान उसका ध्यान महेश की ओर गया। और उसे लगा महेश उसके काम आ सकता है।

राजधानी का पत्रकार अब पप्पू भाई के ‘बांबे बारबर’ का स्थायी

ग्राहक हो चुका था। उसकी दुकान को जाते समय रास्ते पर पड़ने वाली रमेश दा की दुकान के होने या न होने से कोई फर्क नहीं पड़ता था। रमेश दा से दुआ-सलाम हुए भी वर्षों बीत चुके थे।

पप्पू भाई ‘आइए भाई साहब’ कह कर उसका स्वागत करता। पूरी तसल्ली से बाल काटता। फिर सिर की मालिश करता। पत्रकार को लगता जैसे महीने भर की थकान गायब हो चुकी है। पप्पू

भाई की दुकान मुख्य रोड के बजाय गांव के अंदर की ओर थी, इसलिए उसके ग्राहकों की सीमा तय थी। वह सिर्फ गुजर-बसर कर पा रहा था। उसके काम में बढ़ोतरी नहीं हो रही थी। पत्रकार को यह देख कर बुरा लगता। वह उससे कहता कि वह अपनी दुकान मुख्य रोड पर ले जाए तो उसके ग्राहकों की संख्या बढ़ सकती है। पप्पू भाई कहते, वहाँ दुकान काफी महँगी मिल रही है। वह रिस्क लेने से घबराता। इसी बीच वहाँ एक और नई दुकान खुल गई, जिसके बाद धीरे-धीरे पप्पू भाई का काम भी कम होने लगा। मगर इसी दौरान पप्पू भाई ने इलेक्ट्रिक रिकशे में हाथ आजमाने की ठान ली। वह रमेश दा की तरह दुकान से ही चिपके रहने को तैयार नहीं था।

एक दिन ऑफिस से आते हुए राजधानी का पत्रकार खोजकर्ता महेश को आते हुए देखकर रुक गया और उसके नजदीक आने पर एक के बाद एक फोटो खींचने लगा। महेश को उसके फोटो खींचने से कोई फर्क नहीं पड़ा। वह हमेशा की तरह कुछ ढूँढते हुए आगे को बढ़ गया। पत्रकार ने पीछे से भी कुछ फोटो खींच लिए। घर जाकर

इत्मीनान से चाय पीने के बाद वह पोस्ट लिखने लगा- ‘जिंदगी कब किस तरह से चौंका दे कोई भरोसा नहीं। महेश मेरे बचपन का दोस्त था। खुशमिजाज और मिलनसार। पिछले कुछ दिनों से आते-जाते उसे देख रहा था। यकीन नहीं हो रहा था कि यह व्यक्ति मेरे बचपन का दोस्त ही है। सुध-बुध खोया हुआ एक अलग इंसान। पिछले दिनों रुक कर ध्यान से देखा तो शंका दूर हुई, वह महेश ही था। बात करने की कोशिश की, मगर वह मुझे पहचान नहीं रहा था। उसकी यह हालत देख कर बहुत दुख हुआ। साथ में पत्रकार ने विभिन्न कोणों से खींचे हुए उसके तीन फोटो भी लगा दिए।

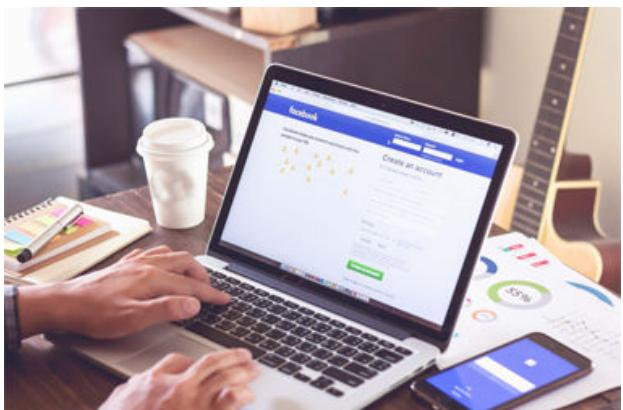
पोस्ट के अपलोड होते ही फोन लाइक तथा कमेंट से घनघनाने लगा। अगले दिन सुबह उसने देखा उसके पोस्ट तीन दिन में 1000 के पार जाते थे, अब एक दिन में ही हजार के आंकड़े छूने लगे थे। कमेंट दो सौ से ऊपर पहुँच चुके थे। अधिकांश टिप्पणियाँ सलाम, शानदार, बढ़िया, लगे रहो, वाह, क्या बात है, वेलडन,

तुस्सी ग्रेट हो के रूप में आई थीं। जिन्होंने ठहर कर पढ़ा उन्होंने लिखा था- ‘आपकी संवेदनशीलता को सलाम’, ‘आप अपने बचपन के दोस्त को नहीं भूले’, ‘हम तो रोज ही पुल से गुजरते हैं, हमें तो महेश कभी नहीं दिखा!’ ‘आप सचमुच महान हो!’

यह सब पत्रकार को खुश करने वाली बातें थीं। मगर कुछ लोगों ने ऐसा लिख दिया था, जिसकी

वह पहले कल्पना नहीं कर पाया था- ‘आपका दोस्त मानसिक रोग का शिकार है, उसको इलाज की जरूरत है।’ ‘आपने उसके लिए क्या किया?’ ‘महेश को बचाना होगा।’ ‘कुछ कीजिए। वह आपके बचपन का दोस्त है।’ ‘उसे इस तरह छोड़ा नहीं जा सकता।’ ‘आप जिस तरह की सहायता चाहते हैं, हम तैयार हैं।’

इन बातों ने उसे परेशान कर दिया। महेश के इलाज की सामान्य-सी बात उसके दिमाग में क्यों नहीं आई? क्या वह भी परले दरजे का स्वार्थी हो चुका है? क्या उसे भी सिर्फ अपने फायदे से मतलब है? उसे लग रहा था, इस पोस्ट के माध्यम से लोगों ने खुद उसे ही उसका चेहरा दिखा दिया है। वह प्रशंसकों



की टिप्पणियों को लाइक करता, पर लोग मानने को तैयार नहीं थे। वे कमेंट के ऊपर कमेंट करते जा रहे थे। ‘बताइए, हम क्या कर सकते हैं? महेश को ऐसे नहीं छोड़ा जा सकता!’ हारकर उसने लिखा कि सभी साथियों की संवेदनाओं के लिए आभार। वह महेश के इलाज के लिए कोशिश कर रहा है। शीघ्र ही सभी को आगे की कार्रवाही से अवगत कराया जाएगा।

महेश अब हर समय उसके दिमाग में धूमता रहता है। उसने खुद ही आफत मोल ली थी। वह उसके बारे में सोचने लगा था—महेश की खोजबीन का समय तय है। वह शाम को नहीं दिखाई देता। न जाने वह किस समय आता-जाता है। एक बात तय है कि वह अपने बड़े भाई के साथ ही रहता होगा। वरना इतने दिनों जीवित कैसे रहता? वैसे जीवित रहना, इतना बड़ा सवाल नहीं है। महेश जैसों को दो समय का खाना चाहिए। रात बिताने के लिए कोई छोटा-सा कोना। जब जानवरों की बसर हो जाती है तो महेश के लिए क्या समस्या। वह इंसान है और खाना तो लोग दे ही देते होंगे। इतनी इंसानियत अभी बच्ची हुई है। रहता भाई के साथ ही होगा। रमेश उसका इलाज न करा पाया हो। रहने को एक कोना तो देता ही होगा।

वह लौटते समय महेश को देखता और सोचता, कहाँ फँस गया। उसे अपना दोस्त कहने की क्या जरूरत थी? तीन-चार बार साथ खेलने और कभी-कभी हुई मुलाकात से क्या कोई दोस्त हो जाता है? फिर उसके भीतर से ही कोई कहता—‘दोस्त होने के लिए यह भी तो जरूरी नहीं कि आप साथ रहे हों। किसी के खास स्वभाव से भी तो हम किसी के करीब हो जाते हैं। एक-दूसरे की खिंचाई, प्रतियोगिता तथा राग-द्वेष रखने वाले साथियों के बीच महेश का मुस्कराते रहना उन दिनों कितना अच्छा लगता था। दुकान में या खेल के दौरान कोई उसका मजाक बनाता, उस पर चिल्लाता, गाली देता तो महेश को कोई फर्क नहीं पड़ता था। उसमें संतों के जैसे गुण थे। तब उसे लगता था, यह कितनी बड़ी बात है। यह एक साथ संत और गधे होने की निशानी है। कुछ लोग महेश को अबे गधे कह कर पुकारते तो उसे बुरा लगता था।

क्या वह महेश का इलाज करवाएगा? उसके लिए यह कौन-सी बड़ी बात है? कितने लोग तैयार हैं? हर जगह उसके संबंध हैं। लोगों से जान-पहचान है। उसे अपने काम के लिए किसी से सिफारिश करना पसंद नहीं है। मगर यह उसका अपना काम थोड़े है। उसे सिर्फ कहना ही तो है। पहले डॉक्टर को दिखाना होगा। वह बताएगा,

उसे क्या परेशानी है और उसका क्या इलाज हो सकता है? फिर लोगों या संस्थाओं से सहयोग लिया जा सकता है। मगर वह इन सब चक्करों में क्यों पड़ेगा। इससे उसे क्या मिलेगा? वैसे ही उसके पास सांस लेने की फुरसत नहीं होती। ऊपर से यह आफत। नहीं, वह इस चक्कर में नहीं पड़े। चुपचाप अपना काम करेगा। दरियों साल से महेश इस हालत में है। अब वह कहाँ ठीक हो सकेगा? उसका कुछ नहीं हो सकता।

## महेश से पीछा छुड़ाने में करीब तीन महीने लग गए। धीरे-धीरे लोगों ने उसके बारे में बात करनी छोड़ दी। मगर पत्रकार यह देख कर हैरान था कि वह खुद महेश से किनारा नहीं कर पा रहा था।

---

लोगों की बेचौनी थी कि थमने का नाम नहीं ले रही थी। वे इनबावस में आकर पूछ रहे थे, आपने कहा था- अवगत कराएंगे। क्या हुआ? कुछ तो यह भी कह रहे थे कि धन्यवाद हम भी रोज उस पुल से गुजरते थे लेकिन कभी महेश पर नजर नहीं पड़ी। कुछ कह रहे थे कि महेश तो अभी भी वहीं भटकता हुआ दिखता है। आपने क्या किया? पत्रकार मन ही मन उन्हें गाली देता, मैंने ठेका ले रखा है क्या उसे सुधारने का।

अब वह कोई और पोस्ट लिखता तो लोग महेश के बारे में पूछते। शायद लोग भी सारे मामले को समझ गए थे। उसे फँसा हुआ समझ कर मजे ले रहे थे। बदले में वह भी चुप रहता और लिख देता, कोशिश चल रही है। मगर लोग पूछते, क्या कार्रवाई चल रही है। वह नेताओं पर लिखते-लिखते उनसे बहुत कुछ सीख गया था। उसने लिखा जल्दी ही एक प्रतिष्ठित संस्था महेश की जिम्मेदारी ले लेगी। यह तरीका कामयाब रहा। लोगों ने शानदार, बढ़िया, यह हुई न बात, दोस्त ने निभाई दोस्ती, दोस्ती सबसे महान- जैसे कर्मेंट की झड़ी लगा दी।

कोई मिलता तो महेश वाले प्रसंग पर उस की तारीफ करने लगता। महेश से पीछा छुड़ाने में करीब तीन महीने लग गए। धीरे-धीरे लोगों ने उसके बारे में बात करनी छोड़ दी। मगर पत्रकार यह देख कर हैरान था कि वह खुद महेश से किनारा नहीं कर पा रहा है। जब भी वह फुर्सत में होता, महेश उसके सामने आकर खड़ा हो जाता। एक दिन वह अपने परिचित डॉक्टर के क्लिनिक गया। सारी स्थिति जानने के बाद डॉक्टर ने कहा कि अब बहुत देर हो चुकी है। उस का नार्मल होना अब संभव नहीं। फिर भी कुछ कहा नहीं जा सकता। उसे मानसिक चिकित्सालय में भर्ती करवा सकते हो। क्या पता वहाँ भर्ती करने से धीरे-धीरे ठीक हो जाए!

पत्रकार समझ गया था। इनमें से वह कुछ भी करने की स्थिति में नहीं है। वह ऑफिस जाता तो उसे महेश पूरी तल्लीनता और उत्साह से कुछ खोजता हुआ दिखता। उसके कदमों और चेहरे की चमक देख कर लगता, जैसे अगले ही कदम पर उसे कुछ मिलने वाला हो। शायद इस उम्मीद से ही वह वर्षों से कुछ खोजने में लगा हुआ है। क्या वास्तव में महेश के दिमाग में कोई खोई हुई चीज है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि चीज तो कुछ भी नहीं है और उसका दिमाग उसे खोजने का आदेश देता है। हो सकता है उसके दिमाग में कोई चीज हो। कभी कुछ खोया हो और वह खोना उसके दिमाग में फ्रिज हो गया हो।

पत्रकार सोच रहा था, अगर कभी वास्तव में महेश को उसके द्वारा खोजी जा रही चीज मिल जाए, तब वह क्या करेगा? कहाँ जाएगा? क्या तब भी वह रोज यहाँ आकर परिक्रमा करेगा? इन सवालों के जवाब जानने के लिए महेश का ठीक होना जरूरी है। कौन कराएगा महेश का इलाज? क्या वह कराएगा? महेश के बारे में और कौन सोच रहा है! वही तो है, जो महेश के बारे में इतना कुछ सोच रहा है। तब क्या इलाज भी वही कराएगा?

ग्राम-पोस्ट - रानीबाग, जिला-नैनीताल, उत्तराखण्ड -263126  
मो.9411793190





## घर वापसी

### गोवर्धन यादव

#### गोवर्धन यादव

प्रकाशित कहानी संग्रह  
‘मछुआ के वृक्ष’, ‘तीस बरस घाटी’।

सुबह से ही मनोहर की दाईं आंख फड़क रही थी। जब-जब उसकी दाईं आंख फरकी है, तब-तब उसे शुभ समाचार सुनने को मिले हैं। उसे डाकिया आता दिखा। उसने सहज रूप से अंदाज लगाया कि आज वह उसके बेटे की चिट्ठी जरूर लेकर आएगा। वह प्रसन्नता से भरने लगा। पोर-पोर में रोमांच हो आया था। उसका मृगी-मन कुलाचें भरने लगा। सूखी देह फिर हरियल होने लगी। इसी दिन का उसे बेसब्री से इंतजार था।

विगत चार माह से दिनेश का पत्र नहीं आया, इसी कारण वह पगलाया-सा रहने लगा था। खाने-पीने में उसे अरुचि होने लगी थी। रात की नींद और दिन का चैन छिन गया था। एकांत क्षणों में ऊटपटांग विचार आते, जो दिल और दिमाग को मथ जाते।

एक दिन तो वह डाकघर जा पहुँचा था और अपनी चिट्ठियों के बारे में पूछताछ करता रहा। डाकिए ने जब इनकार की मुद्रा में अपनी भारी-भरकम गर्दन हिला दी, तो उसका शरीर पीपल के पत्ते की तरह कांप गया। तरह-तरह के प्रश्न उसके दिल में सालबोरर की तरह छेद करते रहे। अगरबत्ती की तरह वह दिन-रात सुलगता रहा।

यह विचार भी मन में आया कि वह खुद शहर चला जाए और अपनी आंखों से सभी को देख आए। चाह कर भी वह वैसा नहीं कर पाया। एक तो बुढ़ाती देह, ऊपर से कमजोर आंखों की वजह से वह हिम्मत नहीं जुटा पाया था।

एक बार वह शहर गया था। चिंटू का जन्मदिन था। संयोग से दिनेश साथ था। हवा से बातें करती मोटर में बैठ कर उसे लगा कि वह हवा में उड़ा जा रहा है। उसकी धिग्गी बंध गई थी। अनगिनत वाहनों को बेलगाम दौड़ता देख वह डर-सा गया था। ठगा-सा रह गया था गगनचुंबी इमारतों को देख कर। उसे इस बात पर भी आश्चर्य हो रहा था कि शहर का आदमी चलता कम है और दौड़ता ज्यादा है।

उसकी बुद्धि चकराने लगी। वह अकेला जा पाएगा,

इसमें संदेह होने लगा। पहली बार में ही हिम्मत जवाब दे गई।

दिनेश पत्र नहीं लिख पाया। इसका कारण समझ में आता है। सूरज की पहली किरण के साथ वह उठ बैठता है। दैनिक कर्म के बाद बगल में टिफिन दबाए घर से निकल पड़ता है। उसे रास्ते में

बस भी बदलनी पड़ती है। अगर पहली बस नहीं पकड़ी जा सकी, तो दफ्तर समय पर पहुँच पाना संभव नहीं। उसका कार्यालय भी उसके घर से बीस-पच्चीस किलोमीटर दूरी पर है। अतः समय का पाबंद होना बहुत जरूरी है, उसके लिए।

अति-उत्साहित होते हुए दिनेश ने बतलाया था कि वह दफ्तर से लोन लेकर मोटर साइकल खरीदने की सोच रहा है। सुनते ही वह बमक गया था। उसने दो टूक शब्दों में कह दिया था कि बुरा ख्याल तत्काल मन से निकाल बाहर फेंके।

बेलगाम भागते वाहनों को वह देख चुका था। वह यह भी



देख चुका था कि आदमी आदमी की तरह सड़क पर चल भी कहाँ पाता है। सभी स्पीड में होते हैं। सभी आगे निकल जाना चाहते हैं। आगे निकल भागने की खतरनाक प्रवृत्ति के चलते वह गफलत का शिकार हो जाता है और असमय ही मौत को गले लगा बैठता है। अपने अल्प प्रवास में वह कई दर्दनाक हादसे देख चुका है।

**पत्र पर लिखी इबारत  
दिनेश के हाथ की थी।  
प्रसन्नता के साथ उसे  
अफसोस भी होने लगा।  
सोचने लगा- काश वह  
पढ़ा-लिखा होता तो अब  
तक पत्र पढ़ जाता।  
समाचार से अवगत हो चुका  
होता। पता नहीं दिनेश ने  
पत्र में क्या लिख भेजा है।**

---

कि वह भूल कर भी मोटर साइकल नहीं खरीदेगा और न ही वह इसके लिए इजाजत देगा।

दिनेश की बात समझ में आती है कि उसके पास दम मारने को फुर्सत नहीं है। जब फुर्सत ही नहीं है तो क्या खाक वह पत्र लिख पाएगा। पर बहूरानी क्या करती है दिन भर! दिनेश ॲफिस चला जाता है। चिंटू अपने स्कूल चला जाता है। फुर्सत ही फुर्सत रहती है उसके पास। वह चाहे तो एकाध पोस्टकार्ड अपने बूढ़े ससुर के नाम लिख सकती है। पर महारानी लिख पाए तब न। निपट देहाती-अनपढ़-गंवार बहू बिहा लाता तो बात दूसरी थी। वह तो शहर की कॉलेज-पढ़ी लड़की को बहू बना कर लाया था। ऐसा भी नहीं कि उसे पत्र लिखने का

शहर की न अपनी कोई तमीज होती है, न इंसान के मन में दया-ममता-सहानुभूति ही। वह हादसों को देख कर आगे बढ़ जाता है, मानो कुछ हुआ ही न हो। कोई हमदर्दी नहीं जताता। वह नहीं चाहता कि उसकी इकलौती संतान कभी दुर्घटना का शिकार बने। उसने समझा दिया था कि बस से आने-जाने में ही फायदा है। समय बचाना यहाँ जरूरी नहीं है, जान बचाना आवश्यक है। जान है तो जहान है। अंत में अपना फैसला सुरक्षित रखते हुए उसने आदेश दिया था

शउर नहीं होगा । सब जानती होगी । दिन भर टीवी-फीवी से चिपकी रहती होगी । सच है । समय कहाँ है, उसके पास! उसे रजनी पर क्रोध हो आया था ।

वह कुछ और सोच पाता, डाकिए ने पत्रों के बंडल में से एक पत्र छांट कर उसके हाथ में थमा दिया । वह अपने विचारों की तंद्रा की खोल में से पूरी तरह से निकल भी नहीं पाया था कि डाकिया जा चुका था । उसे अपनी भूल का अहसास होने लगा था ।

पत्र हाथ में आते ही लगा, कुबेर का खजाना हाथ लग आया है । उसके पूरे शरीर में प्रसन्नता की लहर दौड़ने लगी । उसने लिफाफे को उलट-पलट कर देखा । पत्र पर लिखी इबारत दिनेश के हाथ की थी । प्रसन्नता के साथ उसे अफसोस भी होने लगा । सोचने लगा- काश वह पढ़ा-लिखा होता तो अब तक पत्र पढ़ जाता । समाचार से अवगत हो चुका होता । पता नहीं दिनेश ने पत्र में क्या लिख भेजा है । मजमून जानने के लिए वह उतावला हुआ जा रहा था । उसे गोपाल की याद हो आई । उसने झट से पैरों में जूते डाले और घर से निकल



पड़ा । रास्ता चलते उसे होश आया कि वह बंडी-धोती में ही घर से निकल पड़ा है । गांव में सब चलता है, कहते हुए व्यग्रता से वह आगे बढ़ चला था ।

रास्ता चलते कई विचार साथ चलने लगे । गोपाल घर में मिलेगा या नहीं? वह खेलने-कूदने न निकल गया हो! संभव है, वह खेत पर निकल गया हो । खैर! वह उसे ढूँढ निकालेगा ।

बड़ा प्यारा बच्चा है गोपाल । फिर पूरी ट्यूनिंग भी मिलती है उससे । जहाँ भी मिलता है, दादाजी प्रणाम अथवा दादाजी पायलागू कहना नहीं भूलता । कोई काम बतलाओ, फैरन कर डालता है । पढ़ने को कहो, झट

तैयार हो जाता है। उसके पढ़ने का ढंग निराला है। ऐसे बांचता है मानो आंखों देखा हाल सुना रहा हो। लिखने की कहो, फौरन दावात-कलम उठा लाता है। लिखता भी क्या गजब का है, मानो कागज पर मोती टांक रहा हो।

उसने दूर से ही देख लिया था। शायद वह कहीं जाने की तैयारी में था। देखते ही वह ऊंची आवाज में बोल उठा-‘गोपाल, दिनेश का पत्र आया है।’ इसके आगे वह कुछ बोल

नहीं पाया था। बोलने को बचा क्या था। उसकी चाल में गेंद सी उछाल थी। लंबे डग भरता हुआ वह आगे बढ़ चला।

‘दादा जी-पाय लागू’ कहता हुआ गोपाल उसके पैरों तक झुक आया था। उसने उसे उठाते हुए अपने सीने से लगा लिया था। उसे सीने से चिपकाते हुए उसे लगा, ममता का एक सोता अंदर बह निकला है। भाव-विस्वल होते हुए उसके नेत्र सजल हो उठे थे।

गोपाल ने उसके हाथ से लिफाफा ले लिया और ओटले पर बैठते हुए उसे खोलने लगा। वह भी उससे सट कर बैठ गया। विस्फारित नजरों से वह उसे लिफाफा खोलते देखता रहा। पत्र की तहें ठीक करते हुए अब वह पत्र पढ़ने लगा था।

### पिता जी...

पिता जी सुनते ही लगा कि किसी ने मिसरी घोल कर उसके कानों में उड़ेल दी हो। उसकी देह गन्ने की सी मीठी होने लगी थी। उसे ऐसा भी लगा था कि दिनेश सामने प्रत्यक्ष रूप से बैठ कर बातें कर रहा हो।

आनंदपूर्वक हूँ। ऑफिस की व्यस्तताओं की वजह से पत्र लिखने में काफी विलंब हुआ। पत्र न मिलने से आपको कितनी मानसिक पीड़ाओं के बीच से गुजरना पड़ा होगा, आप पर कैसी, क्या बीती होगी! इस दर्द का मुझे एहसास है।

कृपया माफ करने की कृपा करें।

पिता जी... मैंने कितनी ही बार आपसे विनती की है कि आप यहाँ आकर हमारे साथ रहें। आपको लेकर मैं अक्सर चिंताओं से धिरा रहता हूँ। आप गांव में निपट अकेले रहते हैं। आपको कहीं कुछ हो गया तो मैं सहन नहीं कर पाऊंगा। मेरी भी आखिर कोई जवाबदारी है आपके प्रति। आप भलीभांति जानते हैं कि दफ्तर से बार-बार छुट्टियाँ लेकर मैं गांव नहीं आ सकता। आप आना नहीं चाहते। मैं बार-बार नहीं आ सकता। ऐसे मैं कैसे काम चलेगा। आप के न आ सकने का कारण मैं जानता हूँ। आप खेती-बाड़ी, मकान और मवेशियों की वजह से वहाँ फँसे रहते हैं। मैं पूर्व में भी निवेदन कर चुका हूँ कि इन सबको बेच



डालिए। अच्छी-खासी रकम मिल जाएगी। हम या तो यहाँ बना-बनाया मकान खरीद सकते हैं अथवा प्लॉट लेकर मकान बनवा सकते हैं। आप-हम-सब साथ रहेंगे। आपको चिंटू का भी साथ मिल जाएगा। वह भी दादा जी, दादा जी की रट लगाए रहता है, उसे आपका साथ मिल जाएगा। आप ही तो कहते हैं 'मूल से सूद ज्यादा प्यारा होता है।'

पत्र में आगे था, 'अपने किसी निजी काम से गोविंद शहर आया था। मुझसे उसकी मुलाकात हुई थी। मैंने ही पहल करते हुए उससे कहा था कि कोई अच्छा-सा ग्राहक बताए। खेत-बाड़ी न बेचने की वह भी कह रहा था। मेरी ही जिद देख कर वह सभी कुछ खरीदने को तैयार हुआ। वह यह भी कह रहा था कि तय कीमत के अलावा भी वह पांच-पच्चीस ज्यादा देने को तैयार है। वह यह भी कह रहा था कि घर की चीज घर में ही रहेगी।

फैसला अब आपको करना है। इतना अच्छा खरीददार

कहाँ मिलेगा । आप अपनी सहमति-असहमति के बारे में लिख भेजें । मैं समय पर आ जाऊंगा, ताकि रजिस्ट्री वैरह करा ली जाए । शेष शुभ

### आपका दिनेश

एक-एक शब्द वह ध्यानपूर्वक सुन रहा था । खेत-बाड़ी-घर बेच देने की बात सुनते ही वह बमक गया । उसके चेहरे पर क्रोध की परछाइयाँ छाने लगीं । वह तनाव से घिरने लगा । उसकी आंख क्रोधाग्नि से भड़कने लगी । वह दांत पीसने लगा था । उसे लगा कि असंख्य बर्र मक्खियों ने उस पर अचानक धावा बोल दिया है । शब्द अंदर उतर कर विस्फोट करने लगे थे । अंदर सब क्षत-विक्षत था । वह तमतमाकर उठ खड़ा हुआ । गोपाल के हाथ से लगभग पत्र छीनते हुए उसने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए और हवा में उछालते हुए घर की ओर लौट पड़ा ।

गोपाल ने संभवतः आज पहली बार दद्दा को इस तरह भड़कते देखा था । दद्दा का रौद्र रूप देख कर वह घबरा-सा गया था ।

घर आकर वह कटे हुए लट्टे की तरह बिस्तर पर गिर पड़ा ।



वह आवेश में उबल रहा था । इतना होने के बावजूद उसकी सोचने-समझने की बुद्धि बराबर काम कर रही थी । उसे दिनेश की बुद्धि पर तरस आने लगा । वह सोच रहा था- दिनेश अभी बच्चा है, अकल का कच्चा है । तभी वह ऐसी बातें सोच पाया ।

उसने कैसे अनुमान लिया कि दद्दा ऐसा कर सकता है । निश्चित ही गोविंद ने उसे भड़काया होगा । वह किसी अन्य काम से शहर नहीं गया था, बल्कि वह अपने मनोरथ लेकर दिनेश से मिला होगा । जब वह अपना दांव दद्दा पर नहीं लगा पाया तो उसने दिनेश को अपना मोहरा बनाया और वह बेवकूफ

इसके झांसे में आ गया ।

गोविंद परले दर्जे का लंपट है, बदमाश है, धूर्त है, चालबाज है, हरामी है । आए दिन वह गांव में कोई न कोई बखेड़ा करता रहता है । प्रपंच रचना उसकी फितरत है । उसकी गिर्द दृष्टि हमेशा दूसरों की जायजाद पर गड़ी रहती है । दाना डालकर तमाशा देखने की उसकी आदत है । साला हरामी, हरामखोर, बदमाश, कुत्ते का पिल्ला! और भी न जाने कितनी गालियाँ वह बुदबुदाते हुए देता रहा ।

गोविंद का नाम जुबान पर आते ही लगा-मुँह का स्वाद करैला हो आया है । उसका जी मिचलाने लगा था । आक-थू

करते हुए उसने गला साफ किया और खेतों की ओर बढ़ चला ।

हरी-भरी, लहलहाती फसलों को देख कर उसका चेहरा अब कमल की भाँति खिलने लगा था । आंखों में ठंडक भरने लगी थी । शीतल हवा के झोंकों ने बदन से लिपटते हुए शीतलता की लेप चढ़ दी थी । तपते बदन को राहत मिलने लगी । शरीर पर उभर आए दंश के निशान मिटने लगे ।

खेत की मेढ़ों से चलते हुए वह वृक्ष की टहनियों को हाथ में लेकर हिलाता चलता मानो वह

अपने मित्र से हाथ मिला रहा हो । कभी वह पेड़ों के तनों पर अपनी हथेली से हल्की-सी थाप देता । मानो वह उसकी पीठ सहला रहा हो, ऐसा करते हुए वह प्रसन्नता से भरने लगा था । ऐसा कुछ करते हुए उसने अपने पिता को देखा था । बाल सुलभ जिज्ञासा से उसने पूछा था कि वे ऐसा क्यों करते हैं? प्रश्न सुन कर पिता गंभीर हो गए थे । वे आकाश की ओर सर उठा कर देखने लगे थे । शायद आकाश में फैले शब्दों के संजाल समेटने की कोशिश कर रहे थे ।

-जानते हो मन्नू...! ईश्वर ने धरती की उत्पत्ति के ठीक

बाद पेड़-पौधे लगाए। फिर असंख्य जीव-जंतु पैदा किए। बादल-बिजली-पानी वे पहले ही बना चुके थे।

ईश्वर की फिर अपनी मजबूरी थी। यदि वह आदमी की उत्पत्ति नहीं करता तो कौन बताता ईश्वर कैसा है। ईश्वर के मन में भी मानव को लेकर कुछ लालसाएं थीं। ईश्वर की मजबूरी कहें अथवा कुछ भी कह लें। उसे आदमी को धरती पर भेजने का निर्णय लेना पड़ा था।

जानते हो मनू! इन्हीं पेड़-पौधों ने आदमजात को खाने को मीठे-मीठे फल दिए तो तन ढंकने को अपनी खाल दी। इन्हीं पेड़ों की छाल पहनकर वह सभ्य कहला पाया। आदमी ने बदले में इन्हें क्या दिया? सच मानो मनू। ये ही असली धरती-पुत्र हैं। ये एक पल के लिए भी धरती का साथ नहीं छोड़ते। वृक्षों को ऋषि भी कहा गया है।

मनू....! एक पते की बात और सुनो। आदमजात का कोई भी उत्सव हो, तीज-त्योहार हो, बिना वृक्ष की उपस्थिति के संपन्न नहीं होते, यहाँ तक कि आदमी जब प्राण त्यागता है तो वृक्ष ही उसका साथी साबित होता है। वह भी उसके तन के साथ जलता हुआ अपना अस्तित्व मिटा देता है।

आदमजात जब प्रसन्नता से इन वृक्षों से मिलता है तो ये बेहद खुश हो जाते हैं। कोई उन्हें गले लगाए अथवा ठहनी पकड़ कर हिलाए तो ये प्रसन्न होने लगते हैं। यदि इन्हें क्रोध में धारदार हथियार दिखलाओ तो सिहर उठते हैं। मेरे पिता ने समझाया था कि इनमें प्रेम का दर्शन छिपा हुआ है।

वह अपनी जमीन को निष्प्राण टुकड़ा नहीं मानता। धरती माँ होती है। वह अपनी माँ को बेचने की कैसे सोच सकता है। उसे अपनी पिछली सात-आठ पीढ़ियों के बुजुर्गों के नाम कंठस्थ हैं। वह कदापि अपनी जड़ों से नहीं कटना चाहता। वह गोविंद के मकसद को सफल नहीं होने देगा।

उसने खेत से अंजुली भर मिट्टी उठाई। अपने माथे से लगाया। ऐसा करते हुए वह भावुक हो उठा था। उसके नेत्रों से अश्रु बहने लगे थे।

मनोहर को अपनी भूल का अहसास होने लगा था। उसे कभी दिनेश को इस रहस्य से परिचित नहीं करवाया।

वह दिनेश को समझाएगा कि वह नौकरी छोड़ कर चला आए। क्या रखा है शहर में। भीड़भाड़, चीखते-चिल्लाते, भागते शोर मचाते वाहन। यहीं तो है शहर। सांस लेना भी मुश्किल। पग-पग पर डेरा डाले बैठी मौत।

जब से पास वाले शहर ने सुरसा की तरह अपना विस्तार लेना शुरू किया है, तब से उसने गांवों की खुशहाल जिंदगी को निगलना शुरू कर दिया है। गांवों के पढ़े-लिखे नवयुवकों, मजदूर-मिस्त्रियों को शहर के आकर्षण ने गांव छोड़ने पर मजबूर कर दिया है। गांवों में बचे रह गए हैं वे लोग जो खेती-बाड़ी छोड़ कर नहीं जा सकते, वे लोग जो अपाहिज हैं, लाचार हैं, बीमार हैं।

गांधी जी कभी इसी गांव में आए थे। उन्होंने कभी कहा था, गांवों में ही हिंदुस्तान बसता है। नगर महानगरों में विस्तार लेते चले गए। गांव कंगले और उपेक्षित होते चले गए।

वह जानता है कि सामान्य परिवार को जीवन-यापन करने के लिए कितने रुपयों की जरूरत पड़ती है। वह यह भी जानता है कि उसे माह-दो माह अथवा चार माह में कुछ रकम भी भेजनी पड़ती है। तब जाकर उसका बेटा शहर का खर्च उठा पाता है। वह दिनेश को समझाएगा और बतलाएगा कि क्या जरूरत है शहर में रह कर समय बरबाद करने की। अगर वह एक शहरी नौजवान को समझाने में सफल हो गया तो अपने आपको धन्य मानेगा।

विचारों की शृंखला रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। उसने देखा सूरज अस्ताचल की ओर बढ़ा चला जा रहा है। देखते ही देखते सुरमई अंधियारा गहराने लगा था।

बैलों के गले में बंधी धंटियों के मछिम स्वर कानों से आकर टकराने लगे थे।

धंटियों के स्वर स्पष्ट हो चले थे। पास से गुजरने वाला व्यक्ति



और कोई नहीं बल्कि गोविंद ही था ।

मेढ़ पर बैठ कर उसने टेर लगाई- ‘कौन!... गोविंद?’  
‘हाँ दद्दा, मैं गोविंद ही हूँ।’

‘आज बड़ी देर कर दी तैने । जरा एक बात तो सुन । मझे सुनौ हों... तू अपने खेत बारी सबै कुछ बेचन बारे है । का कीमत धरी है तैने । कीमत जो भी धरो होवे, वो से पच्चीस-पचास जादा दूंगो । फिर घर की चीज घरई में रहनी बी चाहिए, जा में भलाई भी है ।’

गोविंद को उसने माकूल जवाब दे दिया । गोविंद को मौन पाकर वह मुस्करा उठा था । गोविंद के पास कोई जवाब नहीं था । बिना प्रत्युत्तर दिए वहाँ से खिसक जाना ही ठीक लगा था उसको ।

उसे रोकते हुए उसने ऊंची आवाज में टेर लगाई... ‘अरे गोविंद ...रुक तो सही... अयसी भी का जल्दी है... एक खुशखबरी तो अउर सुनता जा...।’

गोविंद जानता था कि दद्दा से इतनी जल्दी पिंड छूटनेवाला नहीं है । हार कर उसने बैलों को एक पेड़ के तने से बांध दिया और उलटे पैर लौट पड़ा ।

‘दद्दा... जे कछु कहने हैं, जल्दी से कह डालो...। कई काम करने अबै बाकी पड़े हैं...।’

‘अरे बड़ी खुशखबरी है रे... सुनतइ खुश हो जावेगा... दिनेश की चिठ्ठी आई है । वो नौकरी छोड़-छाड़ के गांव लौटन वालो हैं... है न खुशखबरी तेरे लाने...।’

खबर सुनते ही गोविंद का चेहरा फक पड़ गया था । उसकी सारी योजना खटाई में पड़ गई थी । दद्दा को धन्यवाद दे या फिर भला-बुरा कहे, वह समझ नहीं पा रहा था । शब्द जैसे गले में आकर अटक गए थे । चलने के पूर्व वह इतना ही कह पाया था, ‘अच्छा दद्दा, चलत हूँ, काल फिर मिलहें...।’ इतना कहते हुए वह अंधेरे में गुम हो गया ।

अंधकार में दद्दा के चेहरे पर जैसे चांद उग आया था, जिसका प्रकाश वे स्वयं देख सकते! हालांकि बेटे के रुख को लेकर उनकी चिंता कम नहीं हुई थी ।

103, कावेरी नगर, छिंदवाड़ा-480001 (म.प्र.) मो.9424356400



## गेब्रियल गार्सिया मार्केज

(1927–2014) लैटिन

अमेरिकी उपन्यासकार।

उपन्यास 'सौ साल का  
एकांत' पर नोबल पुरस्कार  
प्राप्त। कथा में जादुई  
यथार्थवाद के जनक।

## प्रेम पार की मृत्यु

मूल : गैब्रियल गार्सिया मार्केज

इंग्लिश : ग्रेगरी रबासा एवं जे.एस. बनर्टेन

हिंदी रूपांतरण : विजय शर्मा

सीनेटर वनसीमो सेन्चेज को जब अपने जीवन के लिए स्त्री मिली, उसके पास मरने के पहले केवल छह महीने और ग्यारह दिन थे। वह उससे एक मायावी गाँव रोजल डेल विर्री में मिला जहाँ रात को तस्करों के जहाज से चोरी का माल उतारा जाता था। और दूसरी ओर, दिन में समुद्री तट की ओर मुँह किए उजाड़, बंजर, दिशाहीन रेगिस्तान का मुहाना दीखता था। दूसरी सब चीजों से इतनी दूर कोई सोच नहीं सकता था कि वहाँ रहने वाला कोई आदमी किसी का भाग्य बदलने में सक्षम है। यहाँ तक कि उसका नाम भी एक मजाक जैसा था, क्योंकि उस गाँव में एकमात्र गुलाब पहनने वाला सीनेटर वनसीमो सेन्चेज खुद था, जब वह उस दोपहर लौरा फैरीना से मिला।

हर चार साल में उसके चुनाव प्रचार के दौरान यह न टाला जा सकने वाला ठहराव था। गम्मत की गाड़ियाँ सुबह ही पहुँच गई थीं। उसके बाद किराए के इंडियन से भरे हुए ट्रक आए। उन्हें शहर से लाया गया था, ताकि वे जनोत्सव में भीड़ बढ़ा सकें। 11 बजे से थोड़ा पहले अनुचरवृंद, संगीत, रॉकेट और जीपों के साथ मंत्री की स्ट्रॉबेरी सोडा रंग की गाड़ी पहुँची। सीनेटर मौसमरहित अपनी एयरकंडीशंड कार में शांत-सौम्य था, लेकिन ज्यों ही उसने दरवाजा खोला, आग के झोंके से वह हिल गया।

उसकी प्योर सिल्क की शर्ट हल्के रंग के सूप जैसे पसीने से तर हो गई। उसने खुद को कई साल बूढ़ा और सदा से अधिक अकेला अनुभव किया। वास्तविक जीवन में वह केवल बयालिस साल का हुआ था, और मेटालर्जिकल इंजीनियर के रूप में गूटीन्जेन से ग्रेजुएट हुआ था। वह पढ़ाकू था, हालांकि उसका लैटिन क्लासिक के लचर अनुवाद से अधिक फायदा नहीं हुआ था। एक चमकीली जर्मन स्त्री से उसकी शादी हुई थी जिसने उसे पाँच बच्चे दिए थे जो अपने-अपने घरों में मस्त थे। तीन महीने पहले तक वह सर्वाधिक प्रसन्न व्यक्ति था, जब उन्होंने उसे बताया वह अगले क्रिसमस तक सदा के लिए मर जाएगा।

जब तक पब्लिक रैली की तैयारियाँ पूरी हो रही थीं सीनेटर ने अपने लिए तैयार घर में एक घंटा अकेले आराम किया। लेटने से पहले उसने पानी पीने के गिलास में गुलाब रख दिया जिसे वह रेगिस्तानी यात्रा में ताजा बनाए हुए था। अपने साथ लाए हुआ डायट खाना खाया, ताकि हर स्थान पर उसके लिए बनाया गया तला बकरा न खाना पड़े। बताई गई संख्या से कई गुना अधिक गोलियाँ लीं, ताकि होने वाले दर्द से बचा जा सके। इसके बाद



उसने बिजली का पंखा अपने नजदीक खींचा और गुलाब की छाया में पंद्रह मिनट के लिए झूले में नंगा पसर गया। झपकी लेने के दौरान उसने मौत के विषय में न सोचने, दिमाग न भटकने देने का कठिन प्रयास किया। डॉक्टरों के अलावा किसी को उसकी

मौत के निश्चित होने का पता न था। उसने अकेले इस रहस्य को सहने का निश्चय किया था, गर्व से नहीं शर्म से। उसने अपनी जीवनचर्या में कोई बदलाव नहीं किया था।

आराम करने, मोटे सूती कपड़े का स्लैक्स और फूलदार शर्ट पहनकर तैयार हो दोपहर तीन बजे जब वह जनता के सम्मुख हुआ उसे सब अपने नियंत्रण में अनुभव हुआ। दर्दनिरोधक

गोलियों से उसकी आत्मा बची हुई थी। तथापि मौत का अपक्षरण उसकी सोच से अधिक घातक था, क्योंकि जब वह मंच पर पहुँचा, तो जो लोग अपने सौभाग्य के लिए लड़ रहे हैं उनके प्रति एक विचित्र अवहेलना से उसका हाथ काँपा। अन्य मौकों पर चौक के गर्म शोलों पर नंगे पैर चलते इंडियन को देख कर उसे जैसा अफसोस होता था, वैसा अनुभव नहीं हुआ। तकरीबन गुस्से से हाथ उठा कर उसने जयजयकार करती भीड़ को शांत किया और बिना किसी मुद्रा के बोलने लगा। उसकी आँखें गर्मी से उबलते समुद्र पर जमी हुई थीं। उसकी नपी-तुली गहरी आवाज में शांत जल का ठहराव था। भाषण कंठस्थ था और न जाने कितनी बार कहा जा चुका था। लेकिन वह उसका न हो कर मार्क्स ओरेलिअस की चौथी किताब ‘मेडीटेशंस’ का भाग्यवादी भाषण था।

‘हम यहाँ प्रकृति को हारने के उद्देश्य से नहीं हैं’, अपनी सारी प्रतिबद्धता के विरुद्ध उसने शुरू किया। ‘हम अपने ही देश में और निकाले हुए नहीं रहेंगे। ईश्वर के अनाथ, यासे और बुरे पर्यावरण में नहीं रहेंगे, अपने ही देश में देशबदर नहीं रहेंगे। लेडीज एंड जेन्टलमैन, हम विशिष्ट होंगे। हम महान और खुशहाल लोग होंगे।’

उसके इस सर्कस का एक पैटर्न था। जब वह बोल रहा होता, उसके अनुचर कागज की चिड़ियों के झुंड बना कर हवा में उड़ाते और ये बनावटी जीव जीवंत हो जाते। तख्तों के बने मंच के ऊपर से उड़ते हुए समुद्र की ओर चले जाते। उसी समय दूसरे लोग फेल्ट के पत्तों वाले कुछ बनावटी पेड़ गाड़ियों से निकाल कर भीड़ के पीछे शोरे की जमीन पर गाड़ देते। वे कार्डबोर्ड की दीवार से बने लाल ईंट तथा शीशे की खिड़ियों वाले आभासी घरों को खड़ा कर देते, जिनसे गरीबों की वास्तविक झोपड़ियाँ ढंक जातीं।

कुछ और समय लेने के लिए सीनेटर ने लैटिन में दो उद्धरण सुनाए। उसने वर्षा बनाने की मशीन, जानवरों के लिए स्वचालित गर्भाधान और बालू में सब्जी उगाने और प्रसन्नता देने वाले सुर्गीदित तेल का वादा किया। जब उसने देखा काल्पनिक दुनिया खड़ी हो गई है, उसकी ओर दिखा कर उसने चिल्ला कर कहा, ‘लेडीज एंड जेन्टलमैन, ऐसा सब होगा हमारे लिए। देखो! यह हमारा होगा।’

दर्शक पीछे घूमे। ऊँचे-से-ऊँचे घर के पीछे चित्रित जहाजों की लाइन खड़ी थी। बनावटी शहर में ऊँचे-ऊँचे मकान खड़े थे। केवल

सीनेटर ने देखा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने, उतारने, चढ़ाने के बीच भयंकर मौसम कार्डबोर्ड से बने शहर को इतना खराब कर चुका था कि यह शहर रोजल डेल विर्झ जितना ही जर्जर लग रहा था।

बारह साल में नेल्सन फैरीना पहली बार सीनेटर का अभिवादन करने नहीं गया। उसने बोर्ड से बने अनगढ़ घर के ठंडे मंडप के नीचे झूले में झपकी लेते हुए भाषण सुना। घर जिसे उसने उन्हीं हाथों से बनाया था जिनसे उसने अपनी पहली पत्नी को डुबाया था। वह डेविल टापू से बच कर एक जहाज से रोजल डेल विर्झ पहुँचा था, जहाज जिस पर मासूम तोते लदे थे। परामरीबो में उसे खूबसूरत विधर्मी अश्वेत स्त्री मिली, जिससे उसकी एक बेटी हुई।



बाद में स्त्री स्वाभाविक कारणों से मर गई, उसे दूसरों की तरह दुर्भाग्य सहन नहीं करना पड़ा। वह उसकी जमीन पर गोभी की खेती करती थी लेकिन उसे उसके डच नाम के साथ स्थानीय कब्रिगाह में दफनाया गया। लड़की को उसका रंग-रूप और पिता की पीली और अचंभित आँखें मिली थीं। उसके पास यह कल्पना करने का अच्छा कारण था कि वह दुनिया की सर्वोत्तम खूबसूरत लड़की पाल रहा था।

जब वह सीनेटर के पहले चुनाव प्रचार के समय मिला था, हमेशा नेल्सन फैरीना ने उससे एक नकली सर्टिफिकेट की याचना की, ताकि वह कानून से बच सके। सीनेटर ने सदा दोस्ताना मगर सख्ती से इसे ठुकरा दिया। नेल्सन फैरीना ने उम्मीद छोड़ी नहीं, कई साल जब भी समय मिलता वह अपने अनुरोध को अलग-अलग ढंग से दोहराता। मगर इस बार वह जलदस्युओं के घर में जिंदा जलने को शापित अपने झूले में पड़ा रहा। जब उसने फाइनल वाहवाही की तालियाँ सुनीं, उसने अपना सिर उठाया और बोर्ड के घेरे के पार देखा। उसने तमाशे का पीछे का हिस्सा देखा- नाटक की सामग्री से बने मकान, पेड़ों की आकृति, बनावटी जहाज से

छुपाया गया समुद्र। उसने निरपेक्ष भाव से थूक दिया।

‘शिट’, उसने कहा, ‘पॉलिटिक्स की काला बाजारी’

भाषण के बाद जैसा रिवाज था, शहर की सड़क पर ढोल-तमाशे के बीच अपनी परेशानियाँ सुनाते लोगों से सीनेटर घिर गया। सीनेटर ने उन्हें अच्छी तरह सुना और बिना कोई बड़ी कृपा किए वह सदा की तरह हरेक को सांत्वना देने का तरीका निकाल लेता। पटाखों और हल्ले-गुल्ले के बीच छत पर अपने छह छोटे बच्चों के साथ खड़ी एक औरत अपनी बात उस तक पहुँचना चाह रही थी।

**हताशा के बावजूद यह  
कल्पना करना कठिन न था  
कि पूरी दुनिया में उस जैसी  
दूसरी खूबसूरत नहीं है।  
सीनेटर का मुँह खुला रह  
गया। ‘गजब! उसने  
आश्चर्य से सांस ली।  
‘भगवान भी क्या करिश्मा  
करता है!’**

थी।’

उत्तर से हँसी की लहर दौड़ गई।

‘ठीक है’, सीनेटर ने निश्चय किया, ‘तुम्हें तुम्हारा गधा मिल जाएगा।’

थोड़ी देर बाद उसका एक सहायक औरत के घर पर एक अच्छा गधा ले कर पहुँचा। गधे पर अमिट स्याही से प्रचार का नारा लिखा था, ताकि कोई भूले नहीं कि यह सीनेटर का उपहार है।

सड़क के इस छोटे हिस्से में सीनेटर ने कुछ और ऐसे ही छोटे-मोटे वादे किए, यहाँ तक कि घर से उसे देखने खाट पर लाए गए एक बीमार आदमी को उसने अपने हाथ से एक चम्मच

दवा दी। अंतिम कोने पर बोर्ड के घेरे के पार उसने उदास और झुलसे हुए नेल्सन फैरीना को झूले में देखा। सीनेटर ने बिना प्रेम के दिखावे के साथ उसका अभिवादन किया।

‘हेलो, कैसे हो?’

नेल्सन फैरीना अपने झूले में पलटा और उसने अपनी उदास जलती आँखों से सीनेटर को भिंगो दिया।

‘मुझे जानते हो न’ उसने कहा।

अभिवादन सुन कर उसकी बेटी सहन में निकल आई। वह सस्ता, उद्धृत गुजराती पोशाक पहने हुई थी। उसके बालों में रंगीन रिबन के फूल लगे हुए थे और गर्मी से बचने के लिए चेहरा रंगा हुआ था। हताशा के बावजूद यह कल्पना करना कठिन न था कि पूरी दुनिया में उस जैसी दूसरी खूबसूरत लड़की नहीं है। सीनेटर का मुँह खुला रह गया। ‘गजब!’ उसने आश्चर्य से सांस ली, ‘भगवान भी क्या करिश्मा करता है!

उस रात नेल्सन फैरीना ने अपनी बेटी को सर्वोत्तम कपड़ों में सजा कर सीनेटर के पास भेजा। गर्मी से झीमते दो राइफलधारी गार्ड ने उसे गलियारे की एकमात्र कुर्सी पर बैठ कर इंतजार करने को कहा।

अगले कमरे में सीनेटर स्थानीय महत्वपूर्ण लोगों के साथ मीटिंग कर रहा था। भाषण में जिन बातों को वह भूल गया था, उन्हें बताने के लिए वे लोग एक साथ जमा हुए थे। हर रेगिस्टानी इलाके में वे एक समान दीखते थे। सीनेटर खुद भी इस रात के विभिन्न सत्रों से थक और ऊब चुका था। कमरे की भारी गर्मी के कारण पसीने से भींगी कमीज को घरघराते बिजली के पंखे की गर्म हवा से वह सुखाने की कोशिश कर रहा था।

‘सही है, हम कागज की चिड़िया नहीं खा सकते हैं’, उसने कहा, ‘आप और हम अच्छी तरह जानते हैं जिस दिन यहाँ मींगनी के ढेर पेड़ और फूल होंगे, जिस दिन गह्रों में कीड़ों के स्थान पर पीने का पानी हो जाएगा, उस दिन आपके या मेरे लिए करने को कुछ नहीं होगा। मेरी बात समझ में आ रही है न?’

किसी ने उत्तर नहीं दिया। बोलते हुए सीनेटर ने कैलेंडर से एक पन्ना फाड़ा और अपने हाथ से एक तितली बना कर उसने बेध्यानी में उड़ा दी। तितली पंखे की हवा के संपर्क में आई और

कमरे के आधे खुले दरवाजे से बाहर उड़ गई। सीनेटर अपनी मौत के साहचर्य का अनुभव करता हुआ नियंत्रित ढंग से बोलता गया।

‘अतः’ उसने कहा, ‘आप लोग बहुत अच्छी तरह जो जानते हैं, मुझे वह दोहराना नहीं पड़ेगा। मेरा पुनर्निवाचन मुझसे अधिक आपके लिए बेहतर बिजनेस है, क्योंकि मैं जमे हुए पानी और इंडियन मिठाई से ऊब चुका हूँ, जबकि दूसरी ओर आप इससे अपनी जीविका चलाते हैं।’

लौरा फैरीना ने कागज की तितली को बाहर आते देखा। केवल उसने देखा, क्योंकि गलियारे के सभी सुरक्षाकर्मी सीढ़ियों पर अपनी बंदूकें दबोचे सो रहे थे। कुछ धूम कर कागज की तितली पूरी खुल गई, दीवाल के साथ फड़फड़ा कर वहाँ चिपक गई। लौरा फैरीना ने उसे अपने नाखून से निकालने की कोशिश की। अगले कमरे की वाहवाही के शोर से एक गार्ड जग गया, उसने उसके इस व्यर्थ प्रयास को देखा।

‘यह नहीं निकलेगी’, उन्नीदे उसने कहा, ‘यह दीवाल पर चेंट की गई है।’

जब लोग कमरे से निकलने लगे, लौरा फैरीना फिर से बैठ गई। सीनेटर कमरे के दरवाजे पर कुंडे पर हाथ रखे खड़ा था।

जब गलियारा खाली हो गया, उसने तभी लौरा फैरीना को देखा।

‘तुम यहाँ क्या कर रही हो?’

‘अपने पिता की ओर से’, वह बोली।

सीनेटर समझ गया। उसने सोते हुए सुरक्षा कर्मियों को देखा, फिर उसने लौरा फैरीना को देखा। उसकी खूबसूरती सीनेटर के दर्द से अधिक थी। उसने तय किया कि मौत ने उसके लिए निर्णय लिया है।

‘अंदर आओ,’ उसने कहा।

लौरा कमरे के दरवाजे पर स्तंभित खड़ी रह गई। हवा में हजारों बैंक नोट तितलियों की

भाँति फड़फड़ाते उड़ रहे थे। पर सीनेटर ने पंखा बंद कर दिया और तितलियाँ कमरे के सामानों पर उतर गईं।



‘देखो’, उसने मुस्कुराते हुए कहा ।

लौरा फैरीना स्टूल पर बैठ गई । उसकी त्वचा क्रूड औयल जैसी धनी और उसी रंग सी तरह चिकनी और कसी हुई थी । उसके बाल युवा धोड़ी की तरह और उसकी बड़ी-बड़ी आँखें रोशनी से अधिक चमकीली थीं । सीनेटर ने उसकी नजर का पीछा किया और गर्मी से कुम्हलाए गुलाब को देखा ।

‘यह गुलाब है,’ उसने कहा ।

**सीनेटर परेशान नहीं  
हुआ । बहुत देर आँखें बंद  
करके वह चुप रहा । जब  
उसने फिर से आँखें  
खोलीं तो लगा वह अपनी  
सर्वाधिक छिपी संवेदनाएं  
से होकर लौटा है ।**

---

जूते उतारने में सहायता करने को कहा ।

वह खाट के सामने घुटनों के बल बैठ गई । सीनेटर उसे निहारता रहा पूरी तरह, जब वह जूतों के फीते खोल रही थी । वह सोच रहा था । उनमें से किसका अंत इस दुर्भाग्य की वजह से होगा ।

‘तुम बच्ची हो’, वह बोला ।

‘इसका विश्वास मत करो’, वह बोली । ‘एप्रिल में उन्नीस की हो जाऊँगी ।’

सीनेटार की रुचि जागने लगी ।

‘किस दिन?’

‘ग्यारह को’, वह बोली ।

सीनेटर को भला लगा । ‘हम दोनों मेष राशि के हैं’ – उसने कहा ।

और मुस्कुराते हुए जोड़ा– ‘यह एकाकीपन का चिह्न चिह्न है ।’

“हाँ”, थोड़ी बेचौनी से उसने कहा, वे रिओहचा (कोलंबिया का एक स्थान) में क्या कहलाते हैं, मैंने सीखा है ।

सीनेटर शर्ट के बटन खोलते हुए गुलाबों की बात करता हुआ सैनिक खाट पर बैठ गया । वहाँ से वह सोचता, जहाँ छाती के भीतर उसका दिल है । वहाँ छाती पर उसने तीर से पार हुए दिल का गोदना गुदवाया हुआ था । उसने तर कमीज फर्श पर फेंक दी और लौरा फैरीना से उसके

लौरा फैरीना ध्यान नहीं दे रही थी। उसे नहीं मालूम था जूतों के साथ क्या करे। दूसरी ओर सीनेटर भी नहीं जानता था कि लौरा फैरीना का क्या करे, क्योंकि वह अचानक प्रेम करने से कभी परिचित नहीं था। इसके अलावा, वह जानता था कि हाथ में आई लड़की का अनादर ठीक नहीं है। सोचने के लिए थोड़ा समय लेते हुए उसने लौरा फैरीना को घुटनों के बीच जकड़े रखा। उसे कमर से पकड़ कर अपनी पीठ के बल खाट पर लेट गया। तब उसे पता चला कि ड्रेस के भीतर वह नग्न थी, उसका शरीर जंगली जानवर की गंध दे रहा था, लेकिन उसका हृदय डरा हुआ था और उसकी त्वचा ठंडे पसीने से बेचैन थी।

‘हमें कोई प्यार नहीं करता है’, सीनेटर ने उसांस भरी।

लौरा फैरीन ने कुछ कहने की कोशिश की, पर उसके लिए सांस लेना कठिन था। सीनेटर ने उसे अपनी बगल में लिटा लिया। बत्ती बंद हाने के बाद दीम कमरा गुलाब की छाया में था। लौरा फैरीना ने खुद को भाग्य की दया पर छोड़ दिया। सीनेटर उसे धीरे-धीरे सहलाने लगा, हल्के हाथ से स्पर्श करते हुए उसे टटोलने लगा। मगर जहाँ वह उसे पाने की आशा कर रहा था, वहाँ उसे रास्ते में लोहे की कोई चीज मिली।

‘यहाँ क्या है?’

‘ताला’, उसने कहा।

‘ये क्या बला है!’ सीनेटर ने फुँफकारते हुए कहा हालांकि वह बहुत अच्छी तरह जानता था, पर उसने पूछा।

‘चाभी कहाँ है?’

लौरा फैरीना ने राहत की सांस ली।

‘मेरे पापा के पास’, उसने उत्तर दिया, ‘उसने मुझसे कहने को कहा कि अपना आदमी चाभी लेने भेजो और उसके साथ लिखित वादा भेजो कि तुम उसकी हालत सुधारोगे।’

सीनेटर तनाव से भर गया। ‘हरामी मेंढक’, वह गुस्से से भुनभुनाया। तब उसने राहत के लिए अपनी ऊँचें बंद कर लीं



और अंधेरे में खुद से टकराया। उसे याद आया कि वह खुद हो या कोई दूसरा, समय नहीं लगेगा मर जाएगा। अधिक समय नहीं लगेगा जब नाम भी नहीं बचेगा।

उसने कँपकपी गुजर जाने का इंतजार किया।

‘एक बात बताओ’, उसने पूछा। ‘तुमने मेरे बारे में क्या सुना है?’

‘तुम सच जानना चाहते हो?’

‘हाँ, सच।’

‘ठीक है’, लौरा फैरीना ने शुरू किया, ‘वे कहते हैं तुम बाकियों से बदतर हो, क्योंकि तुम दूसरों से अलग हो।’

सीनेटर परेशान नहीं हुआ। बहुत देर आँखें बंद करके वह चुप रहा। जब उसने फिर से आँखें खोलीं तो लगा वह अपनी सर्वाधिक छिपी संवेदनाओं से हो कर लौटा है।

‘ओह, क्या मुसीबत है’, उसने निश्चय किया, ‘कुतिया के पिल्ले अपने बाप से कहो कि मैं उसकी स्थिति मजबूत कर दूँगा।’

‘अगर तुम चाहते हो, मैं खुद चाभी ला सकती हूँ’, लौरा फैरीना ने कहा।

सीनेटर ने उसे पकड़े रखा।

‘भूल जाओ चाभी के बारे में’, उसने कहा, ‘थोड़ी देर मेरे साथ सो जाओ। जब अकेले होते हैं तब किसी का साथ होना अच्छा है।’

लौरा फैरीना ने गुलाब पर आँखें टिकाए हुए उसका सिर अपने कंधे पर रख लिया। सीनेटर अपना चेहरा उसकी जंगली गंध वाली काँख में गड़ाए उसे कमर से पकड़े रहा। उसने उसकी दहशत के सामने समर्पण कर दिया। अपने पद से गिरा और बदनामी के कारण टूटा हुआ तथा लौरा फैरीना के बिना क्रोध से रोते हुए वह छह महीने और ग्यारह दिन बाद इसी मुद्रा में मरेगा।



विजय शर्मा, 326, न्यू सीताराम डेरा, एग्रीको, जमशेदपुर – 831009

मो. 8789001919, Email: vijshain@gmail.com

## महात्मा गांधी और बाबासाहेब आंबेडकर

सूर्यनारायण रणसुभे

क्या माहात्मा गांधी और आंबेडकर वास्तव में एक दूसरे के विरोधी थे? दोनों के विचारों में क्या सचमुच विरोध था? क्या गांधी दलित-विरोधी थे? क्या गांधी सचमुच घोर सनातनी कर्मकांडी हिंदू थे? क्या वे आंबेडकर के विचारों और कार्यों के प्रति नफरत करते थे? क्या उन्होंने गांधी की प्रत्येक योजना का विरोध किया है? क्या आंबेडकर के मन में गांधी के प्रति किंचित भी आदर-भाव नहीं था? पुणे करार पर हस्ताक्षर करने के मूल में आंबेडकर की कौन-सी मजबूरी थी? इन प्रश्नों के उत्तर गांधी और आंबेडकर इन दोनों को एक दूसरे के विरोध में खड़ा करनेवालों को देने होंगे।

इधर महाराष्ट्र में पिछले कुछ वर्षों में अध्येताओं ने इन प्रश्नों पर खोज करने का प्रयत्न किया है। इसके लिए स्रोत रूप में आंबेडकर जी और गांधी जी का लेखन उपलब्ध है। आंबेडकर अंग्रेजी और मराठी दोनों भाषाओं

में लिखते थे। गांधी भी गुजराती और अंग्रेजी में लिखते थे। आंबेडकर के समस्त मराठी लेखन का हिंदी अनुवाद आज तक नहीं हो पाया है। परिणामस्वरूप हिंदी पट्टी के अध्येता और कार्यकर्ता यह नहीं जानते कि आंबेडकर ने समय-समय पर गांधी के आंदोलनों को लेकर कैसी प्रतिक्रिया दी है। इधर जो भी अनुसंधान हुआ है और हो रहा है उसके आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों महामानवों का लक्ष्य एक ही था। प्रसिद्ध दलित नाटककार श्री दत्ता



### सूर्यनारायण रनसुभे

दलित साहित्य के प्रमुख चिंतक,  
चर्चित समीक्षक और अनुवादक।  
'अनुवाद का समाजशास्त्र', 'हिंदी  
उपन्यास के पदचिह्न' आदि पुस्तकों।

भगत के शब्दों में ‘भारत की राष्ट्रनिर्मिति का स्वप्न देखनेवाले महात्मा गांधी और बाबासाहेब आंबेडकर दोनों ही स्वतंत्रता आंदोलन में एक-दूसरे से स्पर्धा करनेवाले महान नेता थे- इसे समझ लेना जरूरी है। इस दृष्टि से लेखन करने की मेरी इच्छा है।’ (सक्षम समीक्षा : अक्टूबर/नवंबर/दिसंबर 2017) मराठी में उपलब्ध स्रोत सामग्री के आधार पर इन दोनों के संबंधों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न यहाँ किया जा रहा है।

(1) आंबेडकर पूरे देश में चर्चा का विषय बने महाड सत्याग्रह के कारण। यह सत्याग्रह महाड के नगरपालिका तालाब से अस्पृश्यों द्वारा पानी भरने के अधिकार के लिए किया गया सत्याग्रह था। इस सत्याग्रह के लिए जो मंडप डाला गया था और मंच बनाया गया था, उस मंच पर एक ही व्यक्ति का फोटो लगाया गया था और वह गांधी का था। यह घटना सन 1928 की है। (डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांचे बहिष्कृत भारत आणि मूकनायक- महाराष्ट्र शासन, मुंबई 2008) दूसरी बात अपने एक मराठी अग्रलेख में डॉ. बाबासाहेब ने यह लिखा है कि ‘मैंने सत्याग्रह की कल्पना गांधी की ओर से ली है।’

(2) हिंदी के अधिकांश आंबेडकरवादी इस बात का बार-बार उल्लेख करते हैं कि डॉ. आंबेडकर ने गांधी को कभी भी ‘महात्मा’ नहीं कहा और न उन्होंने कभी उनके नाम के पूर्व महात्मा विशेषण का प्रयोग किया। इस बात में सचाई है कि आंबेडकर गांधी को मि. गांधी के रूप में ही संबोधित करते थे। विशेष रूप से दूसरे गोलमेज परिषद के बाद। परंतु यह स्थिति स्थायी नहीं थी। उसके बाद के उनके लेखन में उन्होंने कई स्थानों पर गांधी जी को ‘महात्मा’ शब्द से याद किया है। ‘डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांचे समग्र साहित्य-खंड 18’ के दोनों भागों में गांधी जी का उल्लेख कुल 52 बार आया है। वहाँ कई स्थानों पर उन्होंने गांधी जी को ‘महात्मा’ कहा



है। (खंड 18 विभाग-2 पृ. 218, 219, 220-222 और 225)

(3) जब डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने अपने उन तमाम दलित बंधुओं को जो पीढ़ियों से गांवों में रह कर सवर्णों के यहाँ उनकी गंदगी साफ करने का काम कर रहे थे, मरे हुए जानवरों को उठा रहे थे, उनका मांस खा रहे थे- इसे मराठी में ‘गावकीची कामे’ कहा जाता है, इन कामों को पूर्णतः छोड़ देने का आग्रह किया तो इस आवाहन के कुछ ही दिनों बाद कुछ गांवों के वरिष्ठ दलित आंबेडकर से मिले। इन्होंने उनसे पूछा कि आप हमें गावकी के काम छोड़ने के लिए कह तो रहे हैं, पर पीढ़ियों से हम सवर्णों के जूठन पर जी रहे हैं, अगर हम ये काम छोड़ देंगे तो जीएंगे कैसे? परिवार का पोषण कैसे करेंगे? तब बाबासाहेब ने ‘जनता’ साप्ताहिक में लिखा- ‘जिस व्यवसाय में गंदगी नहीं है, अथवा जो व्यवसाय किसी विशिष्ट जाति का नहीं है ऐसा कोई व्यवसाय वे (दलित) कर सकें तो ठीक रहेगा। हमारे मतानुसार इस वक्त ऐसा ही एक व्यवसाय है और वह है खादी बेचने का। दलितों से मेरी व्यक्तिगत

## यह सच है कि गांधी जी ने उपवास द्वारा आंबेडकर पर दबाव डाला, परंतु इस पर भी सोचना पड़ेगा कि गांधी जी ऐसा क्यों कर रहे थे?

सिफारिश है कि वे खादी बुनने का काम करें। अब वे ऐसा सवाल उठाएंगे कि चरखे पर हम जो खादी बुनेंगे, उसे खरीदेगा कौन और उसे अगर कोई खरीद ही नहीं रहा हो तो फिर इसका क्या फायदा? इस समस्या को सुलझाना कठिन नहीं। दलितों को खुद को कपड़ा खरीदना ही पड़ता है। तो सभी दलित अगर खादी के कपड़े पहनना शुरू करें और दलितों द्वारा बुनी गई खादी को ही खरीदने का निर्णय बुनकर (क्योंकि वे भी दलित ही हैं) ले लेंगे, तो उन्हें बुनाई के धर्लों के लिए अन्यों के पास जाने की जरूरत नहीं। अर्थात् इसके लिए थोड़ी बहुत राशि लगेगी, उसकी व्यवस्था सहजता से हो सकती है।’ (आंबेडकर यांचे बहिष्कृत भारत व मूकनायक सं. वसंत मून)

यहाँ स्पष्ट कर देना जरूरी है कि उपर्युक्त कथन में जहाँ-जहाँ दलित शब्द का प्रयोग अनुवादक ने किया है, वहाँ-वहाँ मूल

मराठी में अर्थात् आंबेडकर के मराठी लेखन में अस्पृश्य शब्द का प्रयोग हुआ है।

(4) 14 नवंबर 1956 को आंबेडकर नागपुर में अपने लाखों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म में दीक्षित होनेवाले थे। उसके

एक दिन पूर्व इस धर्म परिवर्तन को लेकर उन्होंने एक पत्रकार परिषद बुलाई थी। उस पत्रकार परिषद में उनसे यह प्रश्न पूछा गया कि आपने बौद्ध धर्म को ही क्यों चुना? इस प्रश्न का विस्तार से उत्तर देते हुए उन्होंने कहा- अनेक कारणों में एक कारण यह भी है कि

मैंने बापू को (वे अपने जीवन में गांधी के लिए दो बार बापू शब्द का प्रयोग करते हैं) यह आश्वासन दिया था कि मैं जब भी धर्म परिवर्तन करूँगा तब ऐसे ही धर्म को चुनूँगा जो इस देश में ही जन्मा है। (धनंजय कीर लिखित ‘डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर की जीवनी’) धनंजय कीर बाबासाहेब आंबेडकर की जीवनी में लिखते हैं। ‘अस्पृश्यता के प्रश्न संबंधी चर्चा करते समय मैंने एक बार गांधी जी से कहा था कि अस्पृश्यता की समस्या को लेकर मेरे और आपके बीच भले ही मतभेद हों, तो भी समय आने पर मैं इस देश को कम-से-कम खतरा हो ऐसा मार्ग चुनूँगा। इस कारण बौद्ध धर्म को स्वीकार कर मैं इस देश का अधिकाधिक हित कर रहा हूँ।’ (डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर : धनंजय कीर)

(5) जब अप्रैल 1948 में उन्होंने पुनर्विवाह किया, अंतरजातीय विवाह किया जो इस विवाह की निमंत्रण पत्रिका उन्होंने सरदार वल्लभभाई पटेल को- जो उन दिनों गृहमंत्री थे- भिजवा दी। सरदार ने इस अंतरजातीय विवाह के लिए शुभकामनाएँ देते हुए लिखा कि अगर आज बापू होते तो वे निश्चित ही इस विवाह में उपस्थित होते और आपको आशीर्वाद देते।

इसके उत्तर में बाबासाहेब ने सरदार को लिखा कि आप



यह सही कर रहे हैं। अगर बापू आज जीवित होते तो वे निश्चय ही हमें आशीर्वाद देते। (जनता पत्रातील लेख : सं. अरुण कांबे)

अगर सचमुच आंबेडकर के मन में गांधी जी के प्रति अनादर होता तो वे महाड सत्याग्रह के अवसर पर मंच पर गांधी की तस्वीर क्यों लगाते? अपने लेखों में वे अनेक स्थानों पर उनका संबोधन महात्मा के रूप में क्यों करते? धम्म-परिवर्तन के पूर्व बुलाई गई पत्रकार परिषद में वे गांधी जी को दिए गए शब्दों का पुनरुच्चार क्यों करते? और अंत में सरदार वल्लभभाई के पत्र के उत्तर में यह क्यों लिखते कि

**‘इन दिनों मेरा अधिकांश समय गांधी जी की अस्पृश्यता निवारण से संबंधित निवेदनों को पढ़ने में जाता है। इन निवेदनों में व्यक्त विचारों को पढ़ कर लगता है कि गांधी जी के विचारों में कितनी बड़ी क्रांति हुई है। गांधीजी को अब हम अपना आदमी कहेंगे।’**

बापू आज होते तो वे हमें निश्चित ही आशीर्वाद देते। वे दलित-बंधुओं से चरखा कातने और खादी के कपड़े पहनने के लिए क्यों कहते? ये सारे प्रमाण उनके लेखन से ही लिए गए हैं।

पुणे करार को बार-बार उछाला जाता है कि गांधी जी ने उपवास द्वारा आंबेडकर पर दबाव डालकर करार को अपनी इच्छानुकूल बदलने के लिए मजबूर किया। यह सच है कि गांधी जी ने उपवास द्वारा आंबेडकर पर दबाव डाला। परंतु इस पर भी सोचना पड़ेगा कि गांधी जी ऐसा क्यों कर रहे थे? इसके मूल में उनकी क्या दृष्टि थी? इस पर मैं

यहाँ कोई टिप्पणी देना नहीं चाहता, क्योंकि इस संबंध में संक्षिप्त टिप्पणी द्वारा बात स्पष्ट नहीं होगी। इस पर कभी स्वतंत्र रूप से मैं लिखूँगा।

यहाँ मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि आंबेडकर जी द्वारा गांधी के प्रस्ताव को स्वीकार करने के मूल में उनकी पराजय नहीं थी, अपितु दलितों के व्यापक हित की दृष्टि इसके मूल में थी।

गांधी जी के उपवास के कारण पूरे देश में विस्फोटक

स्थिति निर्माण हो चुकी थी। आंबेडकर समझौते के लिए तैयार नहीं थे। उपवास की अवधि बढ़ चुकी थी। गांधी जी का स्वास्थ्य पूरी तरह गिर चुका था। डॉक्टरी रिपोर्ट बतला रहे थे कि अगर उपोषण अगले 36–48 घंटे चला तो गांधी जी बच नहीं सकते। गांधी जी की इस मरणप्राय अवस्था के लिए आंबेडकर जिम्मेदार हैं— यह संदेश तो देश भर में चला गया था। ऐसी स्थिति में अगर आंबेडकर समझौता न करते तो दलितों को इसकी क्या कीमत चुकानी पड़ती— इसे बाबासाहेब समझ रहे थे। अगर इस कारण गांधी जी की मृत्यु हो गई तो पूरे देश के सर्वर्ण और बहुजन अपना गुस्सा दलितों पर उतारेंगे, उनकी बस्तियाँ जलाई जाएंगी, उनकी सामूहिक हत्या होगी।

बाबासाहेब जिंदगी भर दलितों की भलाई के लिए संघर्षरत थे। अगर गांधी जी की मृत्यु हो गई तो, देश में मानो गृहयुद्ध ही शुरू हो जाएगा और सत्ताधारी अंग्रेज इस तमाशे को देखते हुए चुप नहीं बैठेगा, क्योंकि उसकी यही इच्छा है कि ये लोग आपस में लड़ें, ताकि वह यह धोषित कर सके ऐसी स्थिति में वे स्वतंत्रता नहीं देंगे।

आंबेडकर नहीं चाहते थे कि अंग्रेजों को यह अवसर मिले और न ही वे यह चाहते थे कि गांधी की मृत्यु के लिए दलित समाज को जिम्मेदार ठहराया जाए। समझौते के इन मूल कारणों तक जाने के बाद ही स्थितियाँ स्पष्ट हो सकती हैं। आंबेडकर जी की दूरदृष्टि का प्रमाण सन 1948 में गांधी हत्या के बाद मिला। गांधी का हत्यारा एक ब्राह्मण है— ऐसा संदेश जाने के बाद महाराष्ट्र के अधिकांश हिस्सों में ब्राह्मणों की बस्तियों में आग लगाई गई। शहरों, कस्बों में स्थित उनके मकानों को लूटा गया, आग लगा दी गई।

दूसरी बात आंबेडकर ने पुणे करार पर हस्ताक्षर करने के पूर्व अपनी नई मांगें गांधी जी से मनवा लीं। पुणे करार का मूल मसौदा तथा समझौते के बाद का मसौदा— इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन महाराष्ट्र के एक अध्येता वसंत पलशीकर ने किया है। अपने अध्ययन द्वारा उन्होंने यह प्रमाणित किया है कि मूल मसौदे से भी अधिक संख्या में प्रतिनिधित्व की मांग आंबेडकर ने की और गांधी जी इसके लिए तैयार हुए।

पुणे ऐक्ट के बाद गांधी और आंबेडकर के विचारों में बुनियादी परिवर्तन होने लगता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण आंबेडकर द्वारा लिखे एक मराठी पत्र में मिलता है :

‘इन दिनों मेरा अधिकांश समय गांधी जी की अस्पृश्यता निवारण से संबंधित निवेदनों को पढ़ने में जाता है। इन निवेदनों में व्यक्त विचारों को पढ़ कर लगता है कि गांधी जी के विचारों में कितनी बड़ी क्रांति हुई है। गांधीजी को अब हम अपना आदमी कहेंगे। क्योंकि वे अब हमारी भाषा और हमारे विचार व्यक्त कर रहे हैं। अस्पृश्यों के दुखों का गांधी जी ने एक निवेदन में जो यथार्थ वर्णन किया है, वह पढ़ते समय मुझे ऐसा लगा कि मैं ‘बहिष्कृत भारत’ या ‘समता’ में छपे अपने पत्रों के कुछ लेखों का अंग्रेजी अनुवाद ही मानो पढ़ रहा हूँ।’

बाबासाहेब आंबेडकर संविधान सभा में न आएं, इसलिए गांधी जी के इशारे पर तत्कालीन कांग्रेस नेतृत्व ने उनके मतदाता संघ को जानबूझ कर नवनिर्मित पाकिस्तान में डाल दिया। अंग्रेजों ने जब बाबासाहेब को संविधान सभा में लेने हेतु दबाव डाला, तब मजबूरी में कांग्रेस ने उन्हें मुंबई से चुन कर लाया और मसौदा समिति का उन्हें अध्यक्ष बनाया। इस प्रकार का जो प्रचार बामसेफ करती है— वह पूर्णतरह झूठ, अनैतिहासिक और कात्पनिक है। यह प्रचार वास्तव में नाथूराम गोडसे की प्रवृत्ति को बल देनेवाला है। इतिहास ऐसा नहीं है। इतिहास यह है— ‘देश के नेताओं के सामने सवाल यह था कि आजादी तो मिल गई, किंतु अब संविधान बनाने की दृष्टि से क्या किया जाए? संविधान से संबंधित एक भी विशेषज्ञ उन्हें नजर नहीं आ रहा था। इस संदर्भ में सुविख्यात पत्रकार पद्मभूषण अक्षयकुमार जैन का उल्लेख महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। जवाहरलाल नेहरू और सरोजिनी नायडू एक दिन महात्मा जी से मिलने गए। नेहरू जी कुछ चिंतित और उदास दिखाई दे रहे थे। महात्मा जी द्वारा इसका कारण पूछने पर पंडित जी ने कहा कि भारत का संविधान बनाने के लिए एक विशेषज्ञ की आवश्यकता है। एशिया द्वीप के कुछ देशों के संविधान निर्माता सर आयव्हर जेनिंग्ज को इस कार्य हेतु बुलाए जाने की बात कुछ लोगों द्वारा उठाई गई है। तब महात्मा जी ने नेहरू जी से

उल्टा सवाल किया कि हमारे देश के ही एक संविधान विशेषज्ञ भीमराव आंबेडकर का नाम उनके ध्यान में क्यों नहीं आया। (संदर्भ- प्रज्ञासूर्य डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, संपादक- डॉ. शरण कुमार लिंबाले- ‘डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर और भारतीय संविधान’ - ले. रमेश शिंदे)

गांधी जी का इतना इशारा काफी था। जिस कांग्रेस ने शुरू में आंबेडकर का विरोध किया था, उसी कांग्रेस ने- गांधी जी के इशारे पर- राजेंद्र प्रसाद और वल्लभभाई पटेल ने महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री बालासाहेब खेर को सूचित कर उनके माध्यम से बाबासाहेब को निर्वाचित किया। मुख्यमंत्री खेर जी ने संविधान सभा के एक सदस्य बै. जयकर को त्यागपत्र देने के लिए कहा और उनके रिक्त स्थान पर आंबेडकर को चुन कर लाया गया। क्या इस इतिहास को हम नकारेंगे?

एक अन्य प्रसंग में स्वयं नेहरू जी के सेक्रेटरी एम.ओ. मथाई ने बताया है। वे एक बार आंबेडकर जी से मिलने गए। बहस में रंग आने पर आंबेडकर बोले- ‘हिंदुओं को महाभारत की जरूरत थी तब उन्हें व्यास मिला। वह शूद्र था। रामायण के लिए वाल्मीकि को बुलाया गया। वह भी शूद्र। और अंत में हिंदुओं को संविधान की जरूरत पड़ी तो मुझे बुलाया गया, मैं भी शूद्र।’ तब मैंने डॉ. आंबेडकर को यह याद दिलाया कि मंत्रिमंडल में आंबेडकर को लिए जाने का सुझाव पं. नेहरू को गांधी जी ने दिया और उसी आंबेडकर ने आगे चल कर संविधान समिति में संविधान का विधेयक प्रस्तुत किया। (‘प्रज्ञासूर्य-सं. डॉ. शरण कुमार लिंबाले’)

संविधान सभा में डॉ. बाबासाहेब का पहला भाषण 9 दिसंबर 1946 को हुआ। उनके इस पहले भाषण से गांधी जी और तत्कालीन कांग्रेस नेतृत्व आश्चर्यचकित हुआ, क्योंकि यह भाषण देशप्रेम और राष्ट्रीयता से भरा हुआ था। इस भाषण के कारण बाबासाहेब के प्रति कांग्रेस का दृष्टिकोण ही बदल गया। गांधी जी के दृष्टिकोण में बहुत पहले ही- पुणे करार के बाद परिवर्तन हो चुका था। एक स्थान पर गांधी जी ने लिखा है कि आंबेडकर जी की राष्ट्रीयता सौ प्रतिशत खरी है। वे सच्चे राष्ट्रहित चिंतक हैं। अगर बाबासाहेब मेरे मुंह पर

थूकें और मुझे जूते से पीटे तो भी मैं बुरा नहीं मानूँगा, क्योंकि हम लोगों ने उन पर और उनके समाज पर इतना अन्याय किया है कि उसकी क्षतिपूर्ति संभव नहीं है।'

आंबेडकर का एक प्रसिद्ध भाषण है— रानडे, गांधी और जिन्ना। बाद में यह पुस्तक रूप में छपा। इसकी प्रस्तावना में उन्होंने स्पष्टता के साथ कहा है— ‘गांधी या जिन्ना के प्रति मेरे मन में कोई द्वेष या ईर्ष्या नहीं है। ...मैं व्यक्ति से अधिक अपने देश से प्रेम करता हूँ।’ (डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, म. गांधी और बैंग. जिन्ना : डॉ. गंगाधर पानतावणे- प्रज्ञासूर्य)। निश्चय ही गांधी-आंबेडकर का संघर्ष उनका व्यक्तिगत संघर्ष कभी नहीं था, बल्कि वह वैचारिक था।

पुणे करार के बाद गांधी जी ने ‘हरिजन’ पत्रिका अंग्रेजी और हिंदी में शुरू की। इसके पहले अंक के लिए गांधी जी ने आंबेडकर जी से संदेश मांगा। यह घटना 1933 की है। इस संदेश में आंबेडकर ने लिखा— ‘अस्पृश्यता वर्ण व्यवस्था का उत्पादन है। जब तक वर्णव्यवस्था है, तब तक अस्पृश्यता रहेगी इस वर्णव्यवस्था को नष्ट किए बगैर अस्पृश्यता सच्चे अर्थों में खत्म होनेवाली नहीं है। (राष्ट्रपिता : मधु लिमये) उनके इस संदेश का प्रतिवाद गांधी जी ने अपने संपादकीय में नहीं किया है। इसका सीधा अर्थ है कि गांधी जी आंबेडकर के विचारों से सहमत थे। इस सहमति के अनेक प्रमाण गांधी जी की 1935 के बाद की विचारधारा में मिलते हैं।

हम इस बात को क्यों समझ नहीं पा रहे हैं कि गांधी और आंबेडकर- इन दोनों महामानवों का व्यक्तित्व निरंतर विकसनशील रहा है। वे किसी एक विचार को लेकर दृढ़ नहीं हैं। गांधी जी निरंतर कहा करते थे कि मैंने जो कल कहा है उसे भूल जाइए, मैं जो आज कह रहा हूँ वह आज का सत्य है। जरूरी नहीं कि वह कल का भी सच हो। बाबासाहेब आंबेडकर ने एक स्थान पर लिखा है कि अपरिवर्तनशीलता पर्याप्त का गुणधर्म है। मनुष्य तो निरंतर बदलता रहता है, बदलते रहना चाहिए।

यह बहुत बड़ी सच्चाई है कि गांधी बाबासाहेब के विचारों के कारण बदलते गए हैं। उनके विचार अधिक व्यापक होते

गए हैं। जीवन के आरंभ के वर्षों में वे जाति-व्यवस्था के कट्टर समर्थक थे। अंतरजातीय विवाह का उन्होंने कड़े शब्दों में निषेध किया है। वही गांधी जी जीवन के उत्तरार्ध में अंतरजातीय विवाह के कट्टर समर्थक बन गए। उनके इस बदलाव के मूल में आंबेडकर की पुस्तक ‘इनहिलिशन ऑफ कास्ट’ रही है। इस मामले में वे इतने कट्टर हो गए कि अपने मानसपुत्र महादेव भाई देसाई के बेटे की शादी में वे इसलिए सम्मिलित नहीं हुए, क्योंकि वह जाति के अंतर्गत विवाह था। गांधी ने अपने एक बेटे का विवाह अंतरजातीय ही किया था। (वैश्य-ब्राह्मण) और आंबेडकर ने भी जीवन के उत्तरार्ध में अंतरजातीय विवाह ही किया था।

अंतरजातीय विवाह से ही जातिप्रथा का अंत होगा- ऐसा दृढ़ विश्वास इन दोनों को हो गया था। जातियाँ नष्ट करने का अर्थ ही था वर्ण व्यवस्था को नष्ट करना। बकौल दत्ता भगत के, अब वर्ण रहे ही कहाँ! इस देश में अब वर्ण का अस्तित्व नहीं है- अस्तित्व है तो सिर्फ़ ‘जातियों’ का। इस कारण जातियों के अंत का अर्थ है वर्णव्यवस्था को नष्ट करना। जब गांधी जी अंतरजातीय विवाहों पर इतना बल दे रहे थे तो फिर उन्हें वर्णव्यवस्था का समर्थक कैसे कहा जा सकता है?

गांधी और आंबेडकर के विचारों और आचरणों में भी कई स्थानों पर अद्भुत समानता है। खुद को सनातनी हिंदू कहलानेवाले गांधी पूरे जीवन में किसी भी मंदिर में नहीं गए। किसी भी धर्मप्रमुख से वे खुद जाकर नहीं मिले। उनके किसी भी आश्रम में किसी भी दीवार पर किसी भी भगवान की तस्वीर नहीं है। वे प्रार्थना भी करते थे तो खुले में।

आंबेडकर भी जीवन में किसी मंदिर में श्रद्धावश नहीं गए। अलबत्ता उन्होंने कालाराम मंदिर प्रवेश का आंदोलन किया, दलितों को उनके अधिकार दिलाने के लिए। गांधी जी ने भी दलितों के मंदिर प्रवेश का खुल कर समर्थन किया। बावजूद इसके कि वे मंदिरों को देवताओं का निवास नहीं मानते थे।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारतीय संविधान का पूरा मसौदा अकेले बाबासाहेब आंबेडकर ने तैयार किया। हालांकि मसौदा समिति में कुल सात सदस्य थे। संविधान लेखन समिति

के एक सदस्य टी टी कृष्णमाचारी ने पांच नवंबर 1948 के अपने भाषण में कहा था- ‘यह सभागृह इस बात से परिवित है कि लेखन समिति के कुल सात सदस्यों में से एक ने त्यागपत्र दिया। उनकी जगह भरी नहीं गई। एक सदस्य की मृत्यु हो गई। उसकी भी जगह खाली है। एक सदस्य अमेरिका गए, उनका स्थान भी रिक्त है। चौथे सदस्य रियासत संबंधी कार्य में उलझे हुए हैं, इस कारण उनकी सदस्यता नाममात्र है।

## गांधी और आंबेडकर की जयजयकार करनेवाले उनके अनुयायियों से यह प्रश्न पूछने की इच्छा होती है कि क्या वे इन दो महामानवों के रास्ते पर चल रहे हैं?

एक-दो सदस्य दिल्ली से बहुत दूर हैं। उनकी तबीयत बिगड़ जाने के कारण वे लेखन समिति की बैठकों में उपस्थित ही नहीं हो सके। अतः हुआ यह कि संविधान लेखन की सारी जिम्मेदारी अकेले आंबेडकर को ही संभालनी पड़ी। ऐसी स्थिति में उन्होंने जिस परिश्रम से काम किया, उस कारण वे इस सभागृह के आदर के पात्र हैं। राष्ट्र उनका सदैव ऋणी रहेगा।’  
(डॉ. बाबासाहब आंबेडकर : धनंजय कीर)

29 अगस्त 1947 के दिन संविधान समिति ने संविधान का मसौदा तैयार करने हेतु एक लेखन समिति गठित की। इस लेखन समिति के अध्यक्ष पद का सम्मान बाबासाहेब आंबेडकर को दिया गया। 29 अगस्त 1947 से लेकर 26 नवंबर 1949 तक संविधान के मसौदे पर बहस होती रही। अगस्त 1947 से जनवरी 1948 तक संविधान की अधिकांश धाराएँ पारित हो चुकी थीं। इनमें मुख्य रूप से अस्पृश्यता निर्मूलन, आरक्षण, राष्ट्रध्वज पर धम्मचक्र आदि की व्यवस्था आंबेडकर कर सके, इसका एकमात्र कारण था उन्हें इस कार्य में गांधी और नेहरू का पूर्ण सहयोग प्राप्त था। ध्यान दें कि उस समय संविधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या 324 थी। करीब 82% सदस्य गांधी और नेहरू के नेतृत्व को स्वीकार कर चुके थे। अगर गांधी जी दलित-विरोधी होते, आंबेडकर विरोधी होते,

वे अगर थोड़ा सा भी इशारा कर देते तो इनमें से कई प्रावधानों को पारित करना संभव ही नहीं था। संविधान के निर्माण में बाबासाहेब का सौ प्रतिशत योगदान है— इसमें संदेह नहीं। परंतु इन प्रावधानों को पारित करवाने में गांधी और नेहरू की भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण रही है। गांधी की हत्या के बाद अलबत्ता संविधान में जिन प्रावधानों की व्यवस्था आंबेडकर करना चाह रहे थे, उसे वे कर नहीं सके। अगर गांधी जीवित होते तो हिंदू कोड बिल भी आसानी से पारित हो सकता था। इसलिए संविधान

## संविधान के निर्माण में बाबासाहेब का सौ प्रतिशत योगदान है— इसमें संदेह नहीं। परंतु इन प्रावधानों को पारित करवाने में गांधी और नेहरू की भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण रही है।

निर्माण में गांधी का अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग रहा है। आंबेडकर द्वारा लिखित संविधान मूर्त रूप में आ सका, इसके लिए संविधान सभा के सभी सदस्य और गांधी का सहयोग भी उतना ही महत्वपूर्ण रहा है। इसे ध्यान में रखना जरूरी है।

आंबेडकर और गांधी की आयु में 22 वर्षों का अंतर था। इन दोनों का संघर्ष वास्तव में दो पीढ़ियों के बीच का संघर्ष था। गांधी की तुलना

में आंबेडकर बहुत युवा थे और इस कारण आक्रामक थे। पर दोनों एक दूसरे के पूरक भी थे। आंबेडकर बहुत आरंभ से जातिविहीन भारतीय समाज का स्वप्न देख रहे थे। इस स्वप्न को साकार करने हेतु उन्होंने अंतरजातीय विवाह का उपाय सुझाया। उनके ‘इनहिलिएशन ऑफ कास्ट’ को श्री मधु लिमये फ्रेंच राज्यक्रांति के बाद का विश्व का सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानवमुक्ति का घोषणापत्र मानते हैं। (राष्ट्रपिता, श्री मधु लिमये) गांधी जी भी जीवन के उत्तरार्थ में जातिविहीन भारत का स्वप्न देख रहे थे। और इसकी पूर्ति के लिए वे आंबेडकर द्वारा सुझाए मार्ग को स्वीकार कर चुके थे। इसलिए रावसाहब कसबे ने कहा कि गांधी अपने जीवन के अंतिम मोड़ पर आंबेडकर बन गए और आंबेडकर गांधी बन गए। वह इस अर्थ में कि गांधी आंबेडकर जी के रास्ते पर चलने लगे और आंबेडकर अहिंसा और करुणा के मार्ग पर। हालांकि यह मार्ग उन्होंने गौतम बुद्ध से

स्वीकारा था। पर गांधी आरंभ से इसी मार्ग पर ही तो चल रहे थे। दोनों ने एक दूसरे के मार्गों को स्वीकारा था। बावजूद इस सारे यथार्थ के -क्या हम अभी भी यह कह पाएंगे कि दोनों एक-दूसरे के शत्रु थे। गांधी और आंबेडकर का अलग-अलग जयजयकार करनेवाले उनके अनुयायियों से यह प्रश्न पूछने की इच्छा होती है कि क्या वे इन दो महामानवों के रास्ते पर चल रहे हैं? भारतीय दलित कवि अपनी कविताओं में जाति व्यवस्था की अमानवीयता पर प्रहार करते हैं, जातिविहीन समाज का स्वप्न देखते हैं। परंतु इनमें से कितने हैं जो अपने बेटे-बेटियों के विवाह अंतरजातीय करने में उत्सुक हैं? उल्टे, वे अपनी-अपनी जातियों और उपजातियों के कोश से बाहर निकलने को तैयार नहीं हैं। क्या सभी दलित जातियाँ एक हो चुकी हैं? क्या उनमें अंतरजातीय विवाह हो रहे हैं? उधर सर्वांगीनी भक्तों से भी यही सवाल पूछा जा सकता है। केवल उन महामानवों के जयजयकार से बात नहीं बनेगी। उनके द्वारा दिए गए कार्यक्रम को कार्यान्वित करने से ही उनके प्रति श्रद्धांजलि व्यक्त की जा सकती है।

बाबासाहेब और गांधी जी व्यक्ति-पूजा के घोर विरोधी थे। बाबासाहेब ने संविधान सभा के अंतिम भाषण में बढ़ती व्यक्ति-पूजा का घोर विरोध किया था। उनका इशारा गांधी-भक्तों की ओर था। इन दोनों के चले जाने के बाद उनके अनुयायी उनकी पूजा में ही जुट गए। सत्ताधारियों ने पूरी धूर्तता के साथ इनकी मूर्तियाँ बनानी शुरू की। उनकी मूर्तियों की मांग भी होने लगी। आंबेडकर अगर जीवित होते तो वे कहते कि प्रत्येक दलित बस्ती में ग्रन्थालय-वाचनालय खोले जाने चाहिए, न कि पुतले या चौक का नामकरण तक उन्हें सीमित रख दिया जाए। किसी भी स्थिति में इन दोनों महामानवों के मुख्य कार्यक्रम अंतरजातीय विवाह को बढ़ावा न मिले, ऐसी कोशिश सत्ताधारी और इन दोनों की भक्त मंडलियाँ कर रही हैं।

गांधी और आंबेडकर को एक दूसरे के विरोध में खड़ा करने से कुछ राजनीतिक पार्टियों, संगठनों को फायदा हो रहा होगा, परंतु इस देश के भविष्य का जो स्वप्न इन दो महामानवों ने देखा था, उसकी पूर्ति कभी नहीं हो सकती।

जखरत इस बात की है कि इन दोनों में जो वैचारिक विरोध था, उस पर अधिक बल देने के बजाए इन दोनों में जो साम्य था, उस पर बल दिया जाए। दोनों के विचारों को, दोनों के प्रति पूर्ण श्रद्धा

रखते हुए स्वीकारने से ही इस देश का सुंदर भविष्य आकार ले सकता है।

ध्यान रखें कि जो मनुवादी वृत्ति के लोग हैं, जो धर्म को केंद्र में रख कर इस देश को एक धर्म की पहचान देना चाहे रहे हैं, -वे इन दोनों का उपयोग अपनी विचारधारा को, अपनी पार्टी को

## अंतरजातीय विवाह को प्रत्यक्ष कार्यरूप में लाए बगैर जातिविहीन समाज की संभावना ही नहीं है। इसे इन दोनों महामानवों ने पहचाना था। इस दिशा में हम क्या कर रहे हैं?

मजबूत करने के लिए कर रहे हैं। वे गांधी को स्वच्छता के प्रतीक के रूप में और आंबेडकर और सरदार वल्लभभाई को मूर्तियों तक सीमित करने निकले हैं। ऐसे में संवेदनशील, प्रगतिशील गांधीवादी और आंबेडकरवादियों की यह नैतिक जिम्मेदारी बन जाती है कि वे गांधी, आंबेडकर का पूजन कर जातिविहीन और धर्मनिरपेक्ष भारत का उनका सपना पूर्ण करने की दिशा में आगे बढ़ें। सौभाग्य से मराठी के बुद्धिजीवी इस दृष्टि से अनुसंधान कर

के लिख रहे हैं। रावसाहेब कसबे, दत्ता भगत, उत्तम कांबे, हरि नरके तथा सुरेश द्वादशीवार का लेखन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

दक्षिण भारत में मार्क्स और आंबेडकर के विचारों में साम्य बतलाने की दृष्टि से कार्य हो रहा है। उसका भी अपना महत्व है। सवाल है कि हिंदी पट्टी के दलित नेता, कवि, बुद्धिजीवी इस दिशा में क्या कर रहे हैं? अंतरजातीय विवाह को प्रत्यक्ष कार्यरूप में लाए बगैर जातिविहीन समाज की संभावना ही नहीं है। इसे इन दोनों महामानवों ने पहचाना था। इस दिशा में हम क्या कर रहे हैं? किसी भी स्थिति में इन दोनों महामानवों को प्रतिक्रियावादियों के चंगुल से बाहर निकालना है। इन दोनों की पूजा ने मानसिकता से बाहर निकलना जरूरी है।

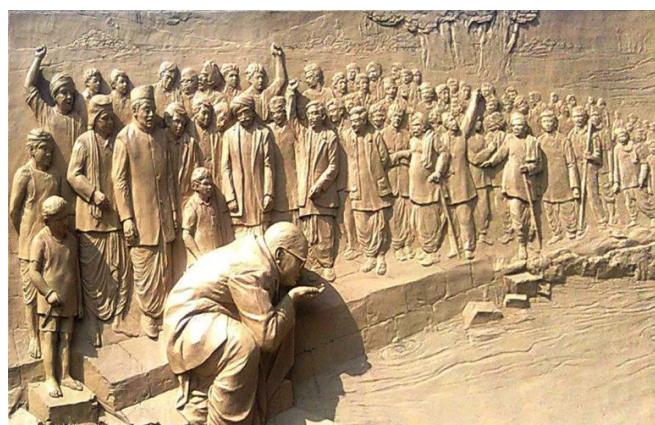
बाबासाहब आंबेडकर आरंभ से ही समाजवादी विचारों के थे। जीवन के अंत में रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना के लिए उन्होंने जिन्हें पत्र लिखे हैं, उनमें राममनोहर लोहिया तथा एस. एम. जोशी प्रमुख थे। वे सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक शोषण के विरोध में थे। मार्क्स का सारा दर्शन ही शोषण से मुक्ति के लिए

खड़ा है। गांधी भी शोषण के विरोध में बोल रहे थे, लिख रहे थे। यह दूसरी बात है कि शोषण के विरोध का उनका दर्शन अति आदर्शवादी था। वे मनुष्य के विवेक का आवाहन कर रहे थे। वे व्यक्ति के हृदय परिवर्तन पर बल दे रहे थे। मार्क्स व्यक्ति की अपेक्षा समूह को शोषण के विरोध में संगठित होने के लिए कह रहे थे। तो बाबासाहेब शोषण मुक्त तथा वर्ण और जातिमुक्त समाज के लिए 'पढ़ो, संगठित हो जाओ और संघर्ष करो' का नारा दे रहे थे। तीनों का लक्ष्य एक ही था- समाज की आखिरी सीढ़ी पर बैठे हुए मनुष्य को अधिक समृद्ध, अधिक सुदृढ़ और अधिक स्वाभिमानी बनाना।

इसलिए भारत के उज्ज्वल भविष्य निर्माण के लिए इन तीनों के विचारों में समन्वय करने की जरूरत है। यह इस युग का तकाजा है। इन तीनों के विचारों में समन्वय स्थापित करते हुए ही हमें आगे बढ़ना होगा।

26 अक्टूबर 1938 को बाबासाहेब ने कहा था- 'हम लोगों में एक दोष यह है कि एक बार विवाद या झगड़ा हुआ कि उसे पीढ़ी-दर-पीढ़ी जारी रखने का पागलपन है। विचारों की प्रस्तुति कालानुरूप होनी चाहिए।' (डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर - खंड 18)

'निकष', 19-अजिंक्य विला, अजिंक्य सिटी, अंबाजोगाई रोड,  
लातूर-413512 (महाराष्ट्र) मो.9423735393



## समीक्षा संवाद

कृष्णदत्त पालीवाल, विनोद शाही  
और राजकुमार की पुस्तकों पर चर्चा

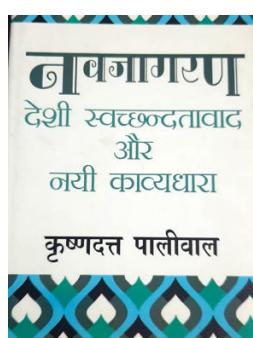
# सांस्कृतिक आलोचना के विविध आयाम

सरोज सिंह

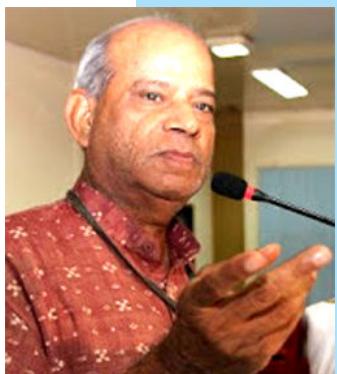
आलोचना सांस्कृतिक अध्ययन का एक बेहतरीन माध्यम है। आलोचना की अंतर्वस्तु और आलोचक के विचारधारात्मक दृष्टिकोण से सांस्कृतिक अध्ययन का स्वरूप निर्धारित होता है। समकालीन आलोचना पूर्वग्रहों से मुक्त बहुआयामी प्रसार का समर्थन करती है। कहा जा सकता है कि एक यथार्थवादी सिद्धांत के लिए साहित्य की संभावनाओं को समझना आवश्यक होता है।

कृष्णदत्त पालीवाल ने 'नवजागरण देशी स्वच्छंदतावाद और नई काव्यधारा' पुस्तक में साहित्य के एक बड़े फलक को सामने लाने काम किया है। इस पुस्तक में लेखक ने रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, अज्ञेय, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, विजय देवनारायण साही, राजकमल चौधरी और धूमिल के काव्य का मूल्यांकन किया है। साहित्य तो जीवन के खुले खेत में उगता है, अनुभवों की खाद से पलता है और धूप में तप कर अन्न रस

बनता है। अज्ञेय की आलोचना करते हुए पालीवाल जी लिखते हैं— 'नीलांबर—परिधान हरित तट पर सुंदर हैं— जैसी स्वदेश वंदना की कविताओं ने अज्ञेय में एक जातीय अस्मिता का संस्कार विकसित किया था। गुप्त जी की कविताओं की भाव—भाषा—शैली से एक राष्ट्रीय—सांस्कृतिक नवजागरण झरकर अज्ञेय में समा



‘मेरे लिए निबंध लिखना रचनाओं से वैचारिक संवाद स्थापित करना भर नहीं है, उनकी पाठात्मकता में पैठकर रचना चिंताओं, रचना की समस्याओं का नए सिरे से सामना करना भी है। रचना कर्म में प्रवेश करने, उनका भाष्य करने का अर्थ है— उन पर युग संदर्भों में नए सिरे से विचार करना, उनको खोल—खंगाल कर समझना—समझाना। अर्थ के एकत्व से हटकर टेक्स्ट या पाठ की बहुलार्थता, अर्थ—व्यंजकता पर ध्यान केंद्रित करना मेरा पाठक—स्वभाव रहा है।... प्रत्येक पाठक एक भिन्न दृष्टिकोण से ‘पाठ’ को पढ़ता है और नए अर्थ का सर्जन करता है। इसलिए अर्थगत एकत्व और अद्वितीयत्व का लीला—जाल कोरा झूठ है। रचनाओं को लेकर किए गए निर्णय और आलोचनात्मक अभिवृत्तियाँ वस्तुतः



## कृष्णदत्त पालीवाल

बहुधरातलीय राजनीतिक—सामाजिक विचारधाराओं के माया—रूपक होती हैं। इसलिए आलोचनात्मक दृष्टिकोण की निष्पक्षता संभव नहीं है।’

गया।’ सर्वेश्वर दयाल सक्सेना को भी वे इसी रचनाधारा से जुड़ा मानते हैं जिसमें गांव, किसान, चौपाये, हल, काढ़ी, ग्रामीण बच्चे, औरतें, खेत, हरियाली, ताल, नदी, चिलम, बीड़ी इत्यादि मिलकर एकाकार हो गए हैं।

पालीवाल जी ने माखनलाल चतुर्वेदी की विवेचना करते हुए लिखा है कि उन पर इतिहास, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र आदि की दृष्टि से अनुसंधान कार्य होना चाहिए। हिंदी में खड़ीबोली को पहली बार बोलचाल की लय में माखनलाल चतुर्वेदी ही ढालते हैं। बोलचाल की जो लय आगे चलकर भवानी प्रसाद मिश्र, केदारनाथ अग्रवाल, मुकितबोध और धूमिल में मिलती है— उस परंपरा में माखनलाल अप्रतिम हैं। कविता ही नहीं, निबंध के क्षेत्र में भी माखनलाल चतुर्वेदी पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।

कृष्णदत्त पालीलाल ने रघुवीर सहाय की कविता में सच कहने की ताकत से बनी उनकी रचनाओं का विवेचना करते हुए कहा है कि रघुवीर सहाय के लिए सामाजिक—राजनीतिक वास्तविकता से उपजे प्रश्न महत्वपूर्ण हैं, चमत्कारी काव्य प्रयोग नहीं हैं। वे किसी भी वाद में नहीं

बंधते हैं, न आंदोलनों के तांडव वेशधारी हैं। आजादी के बाद के 'मोह—भंग' और उसकी पीड़ा—यातना को रघुवीर सहाय का रचना कर्म विचार के केंद्र में लाता है।

## नई कविता के हर मुद्दे पर वाद—विवाद उठाना, खुलकर बहसना, गरजना, संवाद करना और सोचना विजयदेव नारायण साही का ही काम था।

---

हिंदी रचना और आलोचना में विजयदेव नारायण साही ऐसा नाम है, जिसके चिंतन में देशी सर्जनात्मक वैचारिकता का तेज प्रस्फुटित होता है। छायावादोत्तर काव्यशास्त्र का परिदृश्य उनके बिना न केवल अधूरा है, बल्कि बंजर दिखाई देता है। नई कविता के हर मुद्दे पर वाद—विवाद उठाना, खुलकर बहसना, गरजना, संवाद करना और सोचना विजयदेव नारायण साही का ही काम था। कृष्णदत्त पालीवाल ने धूमिल की कविता का मूल्यांकन करते हुए कहा कि धूमिल समकालीन कविता को अपने काव्य—मुहावरे से सीधकर हरा—भरा बनाते हैं तथा सामाजिक अनुभवों के गहरे सरोकारों को उनका कवि—कर्म एक नया अर्थ देता है। इस

अर्थ से वह हमारी जीवनदृष्टि का विस्तार करता है। उनका कवि—कर्म अराजकतावाद की परिणति तक चला जाता है।

स्वच्छंदतावाद और छायावाद निबंध में कृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा है— 'छायावाद भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की चमक और तड़प के भीतर से जन्मा है। इसके रचनाकार इतिहास—पुराण के भीतर उत्तरकर, उसे मथकर विस्मृत अर्थों को स्मृति—संकेतों में जीवंत करते हैं। छायावाद हिंदी की उस स्वच्छंद काव्यधारा का प्रवाह है जिसमें हमारी संस्कृति, दर्शन, इतिहास, भूगोल और स्वतंत्रता आंदोलन का जल कोलाहल कर रहा है।' छायावाद का महत्व व्यक्ति के आत्मप्रसार, मुक्ति की आकांक्षा, नवीन सौदर्यबोध, स्वाधीन कल्पना की उड़ान, शिल्प की रुद्धियों को त्याग कर नए प्रयोगों में निहित है।

**सांस्कृतिक** अध्ययन सबसे पहले साहित्यिक विश्लेषण में विस्तार की मांग करता है। उसी से सामाजिक अर्थों की जाँच भी की जा सकती है। संस्कृति एक विवादित धरातल है, राजनीतिक संघर्ष का एक क्षेत्र भी है, लेकिन यह केवल राजनीतिक नाट्यशाला नहीं हो सकती। यदि संस्कृति सामाजिक अर्थों की संपूर्णता मानी जाए और

यदि राजनीतिक गतिविधि का उद्देश्य एक दिए हुए स्थान के भीतर सामाजिक संबंधों की संपूर्णता है (जैसा एक सच्ची मुक्तिकामी राजनीति की होनी चाहिए) तो पहली दृष्टि में यह प्रतीत हो सकता है कि संस्कृति और राजनीति दोनों एक ही चीज हैं, जैसा कि अब सांस्कृतिक अध्ययनों में माना जाता है।

**विनोद शाही** ने ‘संस्कृति और राजनीति’ पुस्तक में गहन विश्लेषण करते हुए धर्म के पर्दे से बाहर आकर सीधे—सीधे संस्कृति का पर्याय या विकल्प होने का प्रयास करती राजनीति के सच को

बायां किया है। औपनिवेशिक दुनिया को लेखक संस्कृति के दमन की दुनिया मानता है। इसका दूसरा पहलू—इसकी स्त्रैणता और हीनता है। सामान्यतः राजसत्ताएं अपने लिए एक नई ‘धर्मनिरपेक्ष’ चेहरेवाली संस्कृति का निर्माण करती रही हैं। विनोद शाही अपने समय के सांस्कृतिक संकटों से रुबरु होते हुए मध्यकाल के ज्ञान से जुड़ी बहसों की भी चर्चा करते हैं। वे कहते हैं, ‘आधुनिक काल में ज्ञान शिक्षितों को विभाजित करता है और सामान्य आदमी को अजनबी बनाता है।’ इसकी चिंता करते हुए विनोद शाही ने ज्ञान के छोटे—छोटे समूहों को व्यक्त किया है। संस्कृति

सामाजिक अंतर्क्रियाओं एवं सामाजिक व्यवहारों की उत्प्रेरक प्रतिमाओं का समुच्चय है जिसमें ज्ञान, विज्ञान, कला, आस्था, नैतिक मूल्य एवं प्रथाएं समाविष्ट होती हैं। संस्कृति मनुष्य की जीवन पद्धति, वैचारिक दर्शन एवं सामाजिक क्रियाकलाप में मानवीय समष्टिवादी दृष्टिकोण की अभिव्यजना है। सांस्कृतिक अध्ययनों ने समाजवाद, स्त्रीवाद, नस्लवाद—विरोध, साम्राज्य—विरोधी संघर्ष जैसे मुक्तिदायी सामाजिक उद्देश्यों को आगे बढ़ाने का काम किया है। इन विशिष्ट और ठोस

अर्थों में उनका हस्तक्षेप राजनीतिक है। विनोद शाही ने भारत के मिथकीय—सांस्कृतिक आख्यानों के विश्लेषण द्वारा अपने चिंतन को विस्तार दिया है।

विनोद शाही कबीर और रैदास के जुलाहे तथा चर्मकार वाले रूप को केंद्र में रखते हुए, पूर्वप्रचारित सांस्कृतिक परिदृश्य को आलोचना का विषय बनाते हैं या अपने ‘जाति—विरोधी सामाजिक सरोकारों के मुताबिक सांस्कृतिक



परंपराओं को एक नए सांचे में ढालने की कोशिश करते हैं। यह प्रयास मुख्य रूप से सांस्कृतिक नहीं, सामाजिक क्रांति का प्रयास है।

भूमंडलीकरण का सर्वाधिक गौरवशाली पक्ष उसके उत्तर-आधुनिक सांस्कृतिक आयाम में प्रकट होता है। यह बहुलतावादी और लोककेंद्रित अर्थबोध की प्रक्रियाओं को शक्ति प्रदान करता है और गतिशील बनाता है। वस्तुतः स्वेच्छाचारी व्यवस्था बुनियादी रूप में विभाजनात्मक होती है। वह अपने साथ 'विभाजित करो और राज करो' की मूल नीति लेकर आती है। भक्ति का विधायक पक्ष उस दौर में प्रकट हुआ था, जब इसने वैयक्तिकता के जरिए मध्यकालीन स्वेच्छाचारी सामंती व्यवस्था को जबर्दस्त टक्कर दी थी। विनोद शाही का मानना है कि आज भारत जनक्रांति के मुहाने पर खड़ा है। यह जनक्रांति मूलतः सांस्कृतिक होगी, क्योंकि इसकी वजहें यहाँ के इतिहास और सामाजिक चेतना में विद्यमान हैं।

**जिज्ञासा** : संस्कृति की राजनीति के लिए आप किन शक्तियों को जिम्मेदार मानते हैं?

**विनोद शाही** : संस्कृति मनुष्य की सामूहिक चेतना का मानवीय सार होती है। यह सामूहिक चेतना सचेतन और अचेतन दोनों रूपों में संस्कृति के प्रतीक रूपों और व्यवहारों में अभिव्यक्ति पाती है। लोक में संस्कृति का जो गहरा महत्व है, उसके कारण संस्कृति का

राजनीतिक इस्तेमाल, लोगों को अपने पक्ष में करने तथा अधिक शक्ति का अर्जन करने के लिए सदा से होता आया है। आधुनिक काल में यह इस्तेमाल मुख्यतः संस्कृति के सांप्रदायिक और राष्ट्रवादी इस्तेमाल की शक्ति लेता है, जो उत्तर-आधुनिक समय में संस्कृति के उपभोक्तावादी इस्तेमाल में बदल जाता है। संस्कृति के प्रतीक मनुष्य और उसके जीवन से अक्सर बड़े हो जाते हैं। धर्म इन प्रतीकों को ईश्वर का रूप देता हुआ इनका दैवीकरण कर देता है।



**विनोद शाही**

धर्म भी संस्कृति का इस्तेमाल करता है, परंतु उसके सरोकार नैतिक अधिक होते हैं। साहित्य भी संस्कृति का इस्तेमाल करता है, परंतु वह संस्कृति के रूपांतरकारी पक्ष पर केंद्रित रहता है। आधुनिक राजनीति संस्कृति का इस्तेमाल सत्ता में आने के लिए करती है। इसके लिए वह संस्कृति के सांप्रदायिक और राष्ट्रवादी संस्करण तैयार करती है। यह सिलसिला धीरे-धीरे दंगों

की राजनीति में बदल जाता है। अतीत में चाणक्य ने भी धर्म और संस्कृति की राजनीति के साथ जुड़े कई सूत्र अपने अर्थशास्त्र में दिए हैं। अतीत और मध्यकाल में संस्कृति का राजनीतिक इस्तेमाल लोगों को अपने नियंत्रण में रखने से अधिक था। आधुनिक काल में वह लोगों को विभाजित करके आपस में लड़ाने की हद तक चला गया। जनतांत्रिक सत्ता संरचना में बहुमत को अपने पक्ष में करने की वजह से संस्कृति का यह अलग तरह का राजनीतिकरण सामने आया है।

**जिज्ञासा :** नव—औपनिवेशिक दौर का लेखन किन विचारों से अधिक प्रभावित है?

**संस्कृति में धर्म की दखल बढ़ी, तो मनुष्य को आस्तिक और नास्तिक में या धार्मिक और अधार्मिक में विभाजित करके देखा जाने लगा।**

करने में रुचि लेती हैं। विचारधारा के नुमायां हो जाने से बड़े धर्म सांप्रदायिक संस्थाओं के राजनीतिक तंत्र में बदलने लगे।

समानांतर रूप में भाषा, नस्ल या लिंगभेद पर आधारित विचारधाराएँ अपनी अपनी सांस्कृतिक संस्थाओं को विकसित करती नजर आईं। सांस्थानिक संस्कृति के नए दौर में चोर दरवाजे से राजनीति के संसदीय रूपों का आसानी से प्रवेश होने लगा। बाद के नव—औपनिवेशिक दौर में ये विचारधाराएं छोटे—छोटे वर्ग समूहों के विमर्शों में खंडित—विखंडित हो गईं। सभी समूहों के अपने विमर्श निकल आए।

दलित और स्त्री विमर्श भी दो बड़ी कोटियाँ नहीं रहे। वे भी अलग—अलग सामाजिक समूहों के अलग—अलग दलित एवं स्त्री विमर्श हो गए। नव—औपनिवेशिक दौर में यह जो विमर्शों की बहलता है, इसने निजता के सार्वजनिक रूपों का सांस्कृतिक इस्तेमाल करना आरंभ कर दिया है। इससे सांप्रदायिकता तथा राष्ट्रवाद के ऐसे निजी किस्म के रूप सामने आ रहे हैं, जिन्हें छोटे—छोटे समूहों के द्वारा सार्वजनिक होने का मौका मिलता है। सोशल मीडिया भी इसमें अपनी भूमिका निभाता है।

इस तरह हर व्यक्ति की एक अलग संस्कृति और उसका सार्वजनिक रूप अभिव्यक्ति पाने लगा है। इस कारण संस्कृति के उपभोक्ताकरण के

**विनोद शाही :** नव—औपनिवेशिक दौर में संस्कृति का बहुत से विमर्शों में विभाजन ही नहीं, विखंडन तक हो गया है। औपनिवेशिक दौर में यह विभाजन विचारधारात्मक था। उस दौर में धर्म की संस्कृति थी, मध्यकालीन साधनात्मक रूप से अलहदा होकर वह एक तरह की विचारधारा में बदलती है। नया विकसित हुआ विज्ञान भी, संस्कृति के लिहाज से, एक अन्य तरह की विचारधारा की शक्ल लेता है। विचारधाराएं सिद्धांत रूप में पूरे समाज की व्याख्या

लिए रास्ता आसान हो गया है। संस्कृति के ऐसे रूप भी सामने आ रहे हैं जो आत्मधात तक को निजी संस्कृति का एक रूप बनाते हैं— जैसे लू—द्वेल के वीडियो खेल के तहत देखा गया।

यह सारा काम दुनिया को छोटे—छोटे निजी टुकड़ों में बांटकर इसकी चेतना पर नव—औपनिवेशिक अधिकार जमाने से जुड़ा है। बड़ी कंपनियाँ लोगों की निजता तक का प्रायोजन कर रही हैं। नव—औपनिवेशिकता का यह युग लोगों की चेतनामूलक गुलामी का युग है।

**सांस्कृतिक क्रांति के ऐसे  
किसी महान् दौर के प्रकट  
हुए बिना इसके अंतर्विरोधों  
का समन्वय संभव नहीं है।  
जो बात समाज—विरोधी  
हो गई है उसे आखिरकार  
समाज पीछे छोड़कर ही  
आगे बढ़ेगा।**

**जिज्ञासा :** जाति और संप्रदाय आधारित राजनीति की संकल्पना व्यावहारिक रूप से कैसी है?

**विनोद शाही :** संस्कृति अपने व्यापक रूप में मानवीय होती है, परंतु व्यावहारिक रूप जातिगत और सांप्रदायिक भी हो सकते हैं। सामाजिक धरातल पर संस्कृति जातियों में विभाजित होकर विविध जातियों की संस्कृति की तरह अपना काम करती दिखाई दे सकती है।

अतीत में समाज कबीलों में बिखरा हुआ था। वे कबीले बाद में जातियों की तरह एकजुट होकर एक बृहत्तर समाज की परिकल्पना की ओर बढ़े। कबीलों से जुड़े गोत्रों की अलग—अलग संस्कृति थी। इसे वर्ण व्यवस्था की शक्ल देकर वैदिक

संस्कृति का रूप खड़ा किया गया। इसका प्रयोजन समाज को एकजुट करते हुए सामूहिक विकास का हिस्सा बनाना था। वैदिक संस्कृति एक खास तरह का श्रम विभाजन लेकर आई। बाद में यह संस्कृति जातियों और उप—जातियों की अलग—अलग संस्कृतियों में विभाजित हो गई। फिर उनके बीच आपस में टकराव होने लगे और यह पूरी संकल्पना समाज—विरोधी और विकास विरोधी संकल्पना प्रतीत होने लगी।

संस्कृति का धर्मों में अंतर्विभाजन शैव, वैष्णव, बौद्ध, जैन आदि शक्लों में हुआ। इस्लाम और ईसाई धर्म से जुड़ी संस्कृतियों के विविध सांप्रदायिक अंतर्विभाजनों ने भी अपनी भूमिका निभाई। मध्यकाल में जिन राजाओं के पास सत्ता थी, उनका अपना एक धर्म भी हुआ करता था। इस तरह मध्यकाल में धर्म संस्कृति के प्रतिनिधियों को निश्चित करने के लिए एक आधार की तरह काम करता था। आधुनिक काल में धार्मिक संप्रदाय एक दूसरे के विरोध में खड़े कर दिए जाते हैं।

जब हम संस्कृति के मानवीय विकास को अपनी कसौटी बनाते हैं, तो संस्कृति के जातिगत और संप्रदायगत विभाजन को खारिज करते हुए समाज को साझी संस्कृति की आरे ले जाने के सरोकार से जुड़ते हैं। सांस्कृतिक क्रांति के ऐसे किसी महान् दौर के प्रकट हुए बिना इसके अंतर्विरोधों का समन्वय संभव नहीं है। जो बात समाज—विरोधी हो गई है उसे आखिरकार समाज पीछे छोड़कर ही आगे बढ़ेगा।

**संभवतः** मानव जाति को सांस्कृतिक रूपांतर के लिए बहुत सी कुर्बानियाँ देनी पड़ेंगी। भारत में बात हिंदू के हिंदू न रह जाने और पाकिस्तान के मुसलमान के मुसलमान न रह जाने तक जा सके, इसके बिना हमारा रूपांतर अर्थपूर्ण नहीं होगा। पर हम अकेले नहीं बदलेंगे। यह बात पूरी दुनिया के बदलने से जुड़ी है।

**जिज्ञासा :** जन क्रांति किस तरह से समाज और इतिहास चेतना में निहित है?

**विनोद शाही :** आधुनिक काल में जाति और धर्म को पीछे छोड़ते हुए मध्यवर्ग के उदय के कारण वर्ग विभाजन केंद्र में आ गया, तो मनुष्य को समझाने के लिए एक नया सांस्कृतिक मुहावरा गढ़ा गया। इसमें एक तरफ आम आदमी या लघु मानव था, तो दूसरी तरफ महापुरुष या महामानव यानी सुपरमैन था। जनतांत्रिक चेतना के गहरे होने पर बात नागरिक और जन के बीच विभाजन तक चली गई। जनक्रांति ही मनुष्यजाति के सांस्कृतिक इतिहास का लक्ष्य है। इसका संबंध भविष्य के उस मनुष्य के प्रकट होने से है जो इतिहास के अब तक के सारे सामाजिक सांस्कृतिक विभाजनों को पीछे छोड़ देगा। वह एक बड़ी समन्वयमूलक मानवीय चेतना से युक्त होकर हमारे सामने आएगा। जनक्रांति इतिहास चेतना के सार के रूप में तथा सामाजिक विकास के लक्ष्य के रूप में हमारी सबसे बड़ी संभावना की तरह है।

**राजकुमार की पुस्तक 'हिंदी की जातीय संस्कृति और औपनिवेशिकता'** में भाषा—साहित्य और समाज—संस्कृति से संबंधित उन वैकल्पिक संभावनाओं और निहितार्थों को चिह्नित किया गया है, जो राष्ट्रवादी दौर में दबा दिए गए थे। यह ऐसा बहुचर्चित विषय है, जिस पर कई दृष्टियों से विचार किया गया है तथा अन्य दृष्टियों से विचार की आवश्यकता भी है। राजकुमार औपनिवेशिक दौर में निर्मित साहित्य, संस्कृति, समाज और भाषा की उन अवधारणाओं को प्रश्नांकित करते हैं,



जिन्हें लंबे समय तक हिंदी की जातीय और देशज परंपरा के रूप में प्रचारित किया जाता रहा है। लेखक ने आरंभिक आधुनिकता, औपनिवेशिकता और उत्तर—औपनिवेशिकता तीन खंडों से जुड़े सभी संदर्भों और भारतीय सांस्कृतिक इतिहास को दिखाने का प्रयास किया है। भारत का इतिहास भारतीय सभ्यता के विकास से जुड़ा है। वह बहुस्रोतपरक, मिश्रित और नवोन्मेषों से भरा है। इतिहासकार ज्ञानेंद्र पांडेय ने 'गैरियत का गद्य' लेख में व्यक्त किया है, 'मनुष्य के आत्यंतिक दुखों को इतिहास के लेखन में दर्ज कर पाना नामुमकिन है। सुख—दुख, हर्ष—विषाद की आत्यंतिक मनःस्थितियों के आयाम जिस

**जिज्ञासा :** सभ्यता समीक्षा के लिए किन बिंदुओं पर विचार करना आवश्यक है?

**राजकुमार :** अपनी सभ्यता की समीक्षा जरूरी है किंतु इस युग में संवाद भी जरूरी है। अलग—अलग सभ्यताओं की प्राथमिकता और उपलब्धियाँ अलग—अलग हो सकती हैं। किसी भी सभ्यता में न तो सब कुछ अच्छा होता है, न ही सब कुछ बुरा। सभ्यता समीक्षा का विमर्श अभी तक यूरो—केंद्रित रहा है, इससे भी बाहर निकलने की जरूरत है।

**जिज्ञासा :** औपनिवेशिकता और उत्तर—औपनिवेशिकता के विशिष्ट संदर्भ क्या हैं?

**राजकुमार :** आज हम भारत और भारतीय इतिहास—संस्कृति को जिस रूप में जानते हैं, उसे औपनिवेशिक विमर्श के दौरान गढ़ा गया। एडवर्ड सईद ने अपनी मशहूर किताब 'ओरिएंटलिज्म' में इस प्रसंग की विस्तार से चर्चा की है। शेल्डन पोलक ने लिखा है कि हम तब तक नहीं जान सकते कि उपनिवेशवाद ने दक्षिण एशिया को कैसे बदला, जब तक हमें यह न मालूम हो कि पहले यहाँ क्या था, जिसे उसने बदला। इसलिए औपनिवेशिकता को समझना जरूरी है और उत्तर—औपनिवेशिकता वास्तव में औपनिवेशिक विमर्श का ही भाष्य करती है और एक गैर—यूरोपेंट्रिक विकल्प खोजने की कोशिश भी करती है।

डा. राजकुमार

**जिज्ञासा :** अस्मिता की अवधारणा को किस प्रकार राजनीतिक विचारधाराएँ प्रभावित करती हैं?

**राजकुमार :** आधुनिक दौर में सबसे बड़ी अस्मिता तो राष्ट्रवाद की अस्मिता है। बाकी सभी अस्मिताएँ उसी के अंदर बनती—बिगड़ती हैं।



अस्मिता की अवधारणाएँ ज्यादातर अपवर्जी अवधारणाएँ रही हैं, जो संबद्धता और पारस्परिकता के बजाय अलगाव और वैष्णविकास पर जोर देती रही है। राजनीतिक विचारधाराओं ने ज्यादातर अपने फायदे के हिसाब से अस्मिताओं को गढ़ा और बदला है। एक समावेशी अस्मिता की परिकल्पना भी संभव है, लेकिन फिलहाल अपवर्जी अस्मिताओं का ही दौर चल रहा है।

**जिज्ञासा :** मध्यकालीन हिंदी साहित्य के अनुसंधानकर्ता क्यों कम होते जा रहे हैं?

**राजकुमार :** सच यह है कि मध्यकालीन ही नहीं, किसी भी काल के हिंदी साहित्य के अनुसंधानकर्ता खत्म हो चुके हैं। अपवादस्वरूप कुछ बचे होंगे, तो बचे होंगे। ज्यादा कड़वी सचाई यह है कि विद्या के एक अनुशासन के रूप में हिंदी विभागों का ही पतन हो चुका है। जोड़-तोड़ में

माहिर कवि—आलोचक—कथाकार जरूर चौकड़ी मार रहे हैं। यदि कुछ—एक युवा अध्येता शोध—अनुसंधान का विचार करते भी हैं तो जोड़—तोड़ वाले कवि आलोचक—कथाकार इस कुफ्र से होने वाले नुकसान के प्रति उन्हें सावधान कर भेंडचाल के बीच ले आते हैं। खोटे सिक्कों ने असली सिक्कों को चलन से बाहर कर दिया है।

तरह साहित्य, संगीत तथा कलाओं में आते हैं, वे समाज विज्ञान के विषयों में उस तरह से आ नहीं सकते।

उपनिवेशित समाज तीन स्थितियों से गुजरता है। पहली स्थिति में वह स्वयं को हीन और औपनिवेशिक प्रभुओं को अपने से श्रेष्ठ मान लेता है या मानने के लिए बाध्य किया जाता है। दूसरी स्थिति में वह औपनिवेशिक प्रभुओं द्वारा निर्धारित श्रेष्ठता के मानदंड के आधार पर स्वयं को औपनिवेशिक प्रभुओं के बराबर सिद्ध करने का प्रयास करता है। तीसरी स्थिति में वह औपनिवेशिक प्रभुओं द्वारा निर्धारित श्रेष्ठता के मानदंड को चुनौती देता है। नवजागरण—कालीन भारतीय समाज इन तीनों स्थितियों से गुजरा है। हमारे देश में लोक और शास्त्र परस्पर अंतर्क्रिया करते रहे हैं। शास्त्र और लोक का संबंध हमेशा मैत्रीपूर्ण नहीं होता। दोनों एक दूसरे के पूरक भी हैं और एक—दूसरे को ऊर्जावान बनाते हैं। यदि लोक ने शास्त्र की उंगली पकड़ी तो शास्त्र को भी लोक



## सरोज सिंह

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,  
सी.एम.पी. कॉलेज,  
इलाहाबाद।

के सामने झुकना पड़ा। राजकुमार जी के लेखों में इस विषय पर व्यापक चिंतन है। लेखक ने त्रिलोचन, नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं के विश्लेषण के जरिए व्यक्त किया है कि इनकी कविताएं आधुनिकतावादी मूल्यों से काफी मुक्त हैं। साहित्य भी एक विर्मशि है, जिसके अपने कायदे और कानून हैं।

कुछ लोगों की दृष्टि में रचना—केंद्रित आलोचना भारतीय है और उससे आगे विकसित होने वाली साहित्यिक सैद्धांतिकी पश्चिमी है, जबकि भारतीय सांस्कृतिक परंपरा और संदर्भ के बिना आलोचना का विकास नहीं हो सकता। उल्लेखनीय है कि उत्तर—उपनिवेशवाद ने ज्ञानमीमांसा के क्षेत्र में वि—औपनिवेशिकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया है। इस तरह साहित्य और कला के अध्ययन में उत्तर—औपनिवेशिक सोच और सूझ के महत्व से इंकार नहीं किया जा सकता।

राजकुमार ने समाज और संस्कृति खंड में समाज के वैचारिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप विधि—विधान और न्याय—प्रणाली पर भी विचार किया है। पुस्तक में मुख्यतः उत्तर—औपनिवेशिक दौर में पश्चिम से आई आधुनिकता और उसके निहितार्थों की आलोचना की गई है।

### समीक्षित ग्रंथ

- (1) **नवजागरण, देशी स्वच्छंदतावाद और नई काव्यधारा :** कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, 2018 (2) **संस्कृति और राजनीति :** विनोद शाही, संवाद प्रकाशन ए 2018 (3) **हिंदी की जातीय संस्कृति और औपनिवेशिकता :** डॉ. राजकुमार, राजकमल प्रकाशन, 2018

**सरोज सिंह**, एसो. प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, सी.एम.पी. कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद मो. 9415616083 ईमेल : [sarojsingh65@gmail.com](mailto:sarojsingh65@gmail.com)

## जीवन संदेश



ज्ञान प्राप्ति का एक मात्र उपाय  
अध्ययन है। नगर-नगर साधारण  
जनों का असाधारण हित करने वाले  
पुस्तकाय खोल दिए जाएँ।

-सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

...

अज्ञानता के महासागर में पुस्तकालय  
एक टापू की तरह है।

-लेमोनी सिनिकेट

...

पुस्तकालय निर्माण जीवन - सृजन के  
समान है। पुस्तकों का संग्रह मात्र  
नहीं।

-कार्लोज मारिया डोमिनगेज

...

जब तक पुस्तकालय बचा हुआ है यह  
भरोसा है कि मनुष्य का भविष्य  
सुरक्षित है।

-टी.एस.इलियट

....

जो बातें मैं जानना चाहता हूँ वे  
पुस्तकों में हैं और मेरा सच्चा मित्र वह  
है जो मुझे ऐसी पुस्तक दे जो मैंने नहीं  
पढ़ी है।

-अब्राहम लिंकन

...  
बच्चे के लिए वह पुस्तक अच्छी है जो  
उसमें पढ़ने की आदत डाले और  
पढ़ना उसकी आत्मिक और निरंतर  
आवश्यकता बन जाए।

-माया एंजलो

## व्यंग्य



## मारवाड़ी राजबाड़ी कुसुम खेमानी

ऋतु बाएँ हाथ से काले चोगे को सम्हालती हुई आँसू भरी धुँधली आँखों से ‘मारवाड़ी राजबाड़ी’ को टकटकी बाँध कर देख रही थी कि स्मृतियों के एक रेले ने इस वर्तमान को धकिया कर पीछे ठेल दिया, साथ ही जोरों से ‘घड़ांग’ और क्रमशः कुछ धीमे सुर में ‘टोंग टन्ना’ और फिर ‘टन टन’ करता पानी रखने का पीतल का कलशनुमा घड़ा कृष्णा देवी की हिकारत भरी जोरों की ठोकर से तीनों ओर की दीवार से टकरा कर लुढ़कता हुआ बाहर की ओर जाने लगा, तो अपनी बड़ी-बड़ी आँखों में पानी भरे ऋतु ने दौड़ कर उसे दोनों हाथों से पकड़ कर कातर स्वर में गुहार लगाई, “बुआ, यह तो अपना ही बर्तन है फिर आप ऐसे क्यों?..” उसके अधूरे वाक्य को अनसुना करते हुए कृष्णा देवी की कर्कश आवाज गूंजी, “ऐ सोरकार बाबू आप क्या हर वक्त अफीम की पीनक में रहते हैं, जो ये बाहरी लोग

मेरी नल से पानी भरे जा रहे हैं और आप ठूंठ से खड़े उन्हें देख रहे हैं? क्या आपकी आँखें फूटी हुई हैं, जो आपको मालिक और नौकर का भेद समझ में नहीं आता? महीने के पहले ही दिन पॉकेट में मोटी तनख्वाह ठूंसते



वक्त तो आपके माथे पर ढेरों आँखें उग आती हैं! वरना न तो आपको सड़क के मोटे-तगड़े कुत्ते और न ही ये लावारिस इन्सान समझ में आते हैं।”

रिरियाती आवाज में बुआ-बुआ की रट लगाए सरला फटी आँखों से कृष्णा देवी का रौद्र रूप देखे जा रही थी और कंठ में अटके शब्द बोले जा रही थी कि तभी कनपटी पर पड़े झन्नाटेदार चाँटे से उसका सिर जोरों से पास वाली दीवार से जा टकराया और एक चीख के साथ ऋतु के मुँह से निकला ‘ओ माँ!’

**इसने ऋतु की स्मृतियों की रील को धक्का मार उसे वापस पुराने ‘ट्रैक’ पर ला दिया। जब चाचा की कारस्तानी के कारण इस मारवाड़ी-राजबाड़ी का बँटवारा नहीं हुआ था और यहाँ उन लोगों का एकछत्र-राज्य था।**

---

इस पर कृष्णा देवी चिहुँक कर बोलीं, “ऐ छोकरी, बेशी नाटक मत कर, एक तो पानी चोरती है, ऊपर से बुक्का फाड़ कर रोती है। अरी बेहया, ‘चोरी तो चोरी ऊपर से सीना जोरी’ का खेल तो आज नया ही देखा।”

शालीनता और अवसाद की एक मूर्ति बदहवास-सी सीढ़ियाँ उतर कर वहाँ आई और बेटी को अपनी ओर खींच कर उसके आँसू पोंछती हुई बोली, “दीदी! बच्ची है, घर में एक बूँद पानी नहीं था, सो अपने ‘मान’ से बड़ा बर्तन उठा कर पानी भरने के लिए ले आई। माफ कर दीजिए।”

बच्चे तो होते ही हैं सच्चे मन के! इसलिए माँ का सहारा मिलते ही ऋतु बोल पड़ी, “माँ, पानी का नल पूरा खुला था और उससे लगातार गिरता पानी नालों में जा रहा था, इसीलिए मैं यह बर्तन ले आई।”

“ऐ सारी दुनियाँ की झूठी, सोरकार बाबू क्या यह सही है?” सरकार बाबू ने बिना कुछ कहे नजरें झुका लीं। उनका यह जवाब देख कर तो कृष्णा देवी के आग ही लग गई, वे लगीं हाथों को झटका दे-देकर गालियों के साथ

उलाहने देने- “अरे ओ शोरकार बाबू मैं सब जानती हूँ। पुराने मालिक से चाटी हुई रियासत का स्वाद अभी भी आपकी जीभ पर है। तभी तो आप भीतर ही भीतर भाभी और छोकरी ऋतु के पक्षधर बने हुए हैं, शोरकार बाबू चाहे मैं नई मालकिन ही ठहरी पर अब यह नल कानूनी कागज पर मेरे हिस्से में आ गया है। इसलिए अपने कानों को पूरा खोल कर ध्यान से सुन लीजिए, आगे से मैं ऐसी किसी भी गलती को माफ नहीं करूँगी, आया समझ में?” कह कर अपनी बांग्ला साड़ी के आँचल में बंधे चाबियों के बड़े गुच्छे को छनकाती हुई उसे अपनी पीठ के ऊपर फेंक कर कृष्णादेवी चप्पल पटकती हुई वहाँ से चल दी।

कृष्णादेवी के जाते ही ऋतु माँ के आँचल में घुस कर सुबकियां भर कर रोने लगी। मारवाड़ी-राजबाड़ी की पूर्व

मालकिन ने उसे जोरों से खुद से चिपका कर असहाय मुद्रा में सरकार बाबू की ओर देखा। बेचारे सरकार बाबू की आँखों में भी पानी भरा था, पर कुछ करने लायक न होने के कारण उन्होंने अपना मुँह दूसरी ओर



घुमा लिया।

तभी एक साधारण सी फिटन वहाँ से गुजरी और इसने ऋतु की स्मृतियों की रील को धक्का मार उसे वापस पुराने ‘ट्रैक’ पर ला दिया। जब चाचा की कारस्तानी के कारण इस मारवाड़ी-राजबाड़ी का बँटवारा नहीं हुआ था और यहाँ उन लोगों का एकछत्र-राज्य था।

सूरज ढल रहा था और अपनी अरुणिमा से सबको

रंगते हुए विदा हो रहा था। असली राजबाड़ी की छतों पर गुलाबजल का छिड़काव हो रहा था। राजबाड़ी के मुख्य द्वार पर दो फिटने जर्मीदारी आन-बान से सजी-धजी अपनी सवारियों की प्रतीक्षा में खड़ी थीं। तभी ‘असली राजबाड़ी’ की करीब वाली मारवाड़ी राजबाड़ी के सामने भी एक फिटन आकर खड़ी हुई जो बिना किसी राजसी ठाट-बाट के भी राजसी लग रही थी। उसकी वजह थी उसका अंग्रेजी स्टोर ‘वाइटवे-लेडला’ से सद्यः आगमन एवं उसका कल्पनातीत मूल्य। बिना किसी साज-सज्जा के उसकी बनावट में एक विशेष प्रकार का आकर्षण था।

**घोड़ों के मचल कर हिनहिनाते  
ही राजबाड़ी के दरवाजे पर  
खड़े संतरियों ने ऐसी जोरों की  
सलामी ठोंकी जैसे वायसराय  
की सवारी के सेना कमांडर को  
सलामी दे रहे हों।**

---

उसकी चमाचम काली महोगनी लकड़ी, उसकी गदियां, पायदान आदि सभी ‘सुधाटु गढ़त’ में गढ़े हुए थे, जो उसे अनायास ही नफासत का नायाब रूप प्रस्तुत कर रहे थे।

सुरमई सौँझ के आगोश में खड़े ‘असल राजबाड़ी’ के अरबी घोड़े जोरों से हिनहिना कर अपनी

उपस्थिति दर्ज करवा रहे थे तो उससे बगलवाली कोठी की फिटन के घोड़े खूबसूरती और कदकाठी में तो असल यालों से होड़ ले रहे थे, पर शांत खड़े मालिक का ऐसी शालीनता से इंतजार कर रहे थे, मानों वे भी असलवालों के खास रुतबे से परिवित हों।

उधर असल राजबाड़ी के ‘नहबत झरोखे’ से शहनाई के स्वर गूँजे और इधर ‘बड़े बाबू’ अपने पाँच-छह चापलूस चमचों से धिरे हुए बड़े दरवाजे पर प्रकट हुए।

उन सभी खुशामदी लोगों की पूरी भंगिमा में एक गिड़गिड़ाता हुआ भाव साफ दिखाई पड़ रहा था। उनमें से एक ननी बाबू थे जो ओहदे में औरों से ऊँचे थे, उन्होंने घुटने के बल बैठ कर बड़े बाबू के पैरों की ‘मोजरी जूती’

को आहिस्ता से अपनी गोद में अपनी धोती से झाड़ा और अपने माबदौलत का दायाँ पैर गोद में रख कर उन्होंने फौरन उसमें मोजरी पहना दी, दूसरे पैर की भी यही क्रिया सम्पन्न करने के बाद उन्होंने उनके पैरों को दोनों हाथों से छूकर प्रणाम करते हुए उन्हें अपने माथे पर ऐसे घुमाया गोया उन्हें अपने इष्ट शिव के चरण-स्पर्श करने का सौभाग्य मिल गया हो।

इसके बाद अब तक प्रतीक्षारत खड़े मणिबाबू आगे आए और मालिक की धोती की चुन्नटों को ठीक कर उन्होंने उनके हाथ में रत्न-जड़ित छड़ी थमा दी और क्षणमात्र भी गँवाए बिना भोला बाबू ने जब लखनऊ इत्र से पगे खुशबूदार ‘धुनी’ को नजर उतारने के लिए मालिक के चारों तरफ

घुमाया तो ऐसा लगा जैसे वे दुर्गा पूजा में देवी दुर्गा के आगे ‘धुनी’ लेकर नाच रहे हों। ‘धुनी’ की सुगंध दूर-दूर तक मुहल्ले में महक उठी और वहाँ के साधारण स्थिति के रहवासी मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट उर्फ चोर-बगान के बरामदों में मंझले बाबू की सवारी की झाँकी देखने



उमड़ पड़े। चाहे यह नजारा अक्सर ही घटता रहता, पर बड़े घरों के चोंचले देखने में साधारण जनता को वैसा ही आनन्द आता था, जैसा बाइस्कोप के डिब्बे में आँख गड़ा कर ‘सात मन की धोबन’ को देखने में। बगधी की ऊँचाई चढ़ने में जर्मीदार बाबू को दिक्कत न हो इसलिए क्षण मात्र में ही नंगी पीठ के दो साँवले मजदूर उस ऊँचाई से ऐसे एकाकार हो गए, मानों वे उस बगधी का ही एक हिस्सा हों और भारी शरीर वाले जर्मीदार बाबू ने आराम से उनकी पीठ पर पैर रखे और अपनी गद्दी पर विराज गए।

बड़े बाबू के सिंहासन पर विराजने के बाद उनके चमचे उनके पैरों में घुसुड़-मुसुड़ कर मालिक का स्पर्श किए बिना



## कुसुम खेमानी

वरिष्ठ लेखिका। ‘सच कहती कहनियाँ’, ‘एक अचम्भा प्रेम’ (कहानी संग्रह)। ‘एक शख्स कहानी-सा’ (जीवनी)। ‘लावण्यदेवी’, ‘जड़ियाबाई’, ‘लालबत्ती की अमृतकन्या’ (उपन्यास) आदि चर्चित रचनाएँ।

ऐसे दुँस-दुँसा कर बैठ गए गोया वे रबर से बने हों। घोड़ों के मचल कर हिनहिनाते ही राजबाड़ी के दरवाजे पर खड़े संतरियों ने ऐसी जोरों की सलामी ठोंकी जैसे वायसराय की सवारी के सेना कमांडर को सलामी दे रहे हों। देखते ही देखते वे घोड़े हवा से बात करते हुए विक्टोरिया मेमोरियल का चक्कर लगा कर बड़े बाबू की बागानबाड़ी के आगे जा खड़े हुए, पलक झपकते ही मणि बाबू दौड़ कर कोठी में गए और आपाद-मस्तक गुलाबी बोसगी सिल्क में लिपटे एक मुजस्मे को बा-अदब बा-मुलाहिजा की भंगिमा में बगधी तक लिवा लाए।

बड़े बाबू के शरीर में पहली बार हल्की-सी जुम्बिश हुई और उन्होंने हल्का सा सरक कर अपनी बगल में जरा सी जगह बना कर अपनी बड़ी मूँछों के नीचे से हल्की-सी मुस्कुराहट के साथ उस कोमलांगी की आगे बढ़ाई हुई हथेली पर अपना हाथ रख दिया, क्योंकि वे ठहरीं ‘फूलबाई’ जिन पर उस समय के अनगिनत राजे-राजवाड़े निछावर थे।

3 लाउडन स्ट्रीट, कोलकता-700017

# वार्षि ऑनलाइन पढ़ें मिलकर बांटकर पाठक ही हैं हमारा भरोसा !

## ग्राहक बनें

वार्षिक 300/- रुपये ■ रजिस्टर्ड डाक से 240 रुपये अतिरिक्त  
 Bharatiya Bhasha Parishad के नाम चेक से भुगतान करें  
 या नेफट द्वारा : कोटक महिंद्रा बैंक, शाखा : लाउडन स्ट्रीट,  
 A/c no. 8111974982, IFSC Code KKBK0006590  
 पर उपर्युक्त नाम से किए जा सकते हैं।

सहयोग करने के लिए संपर्क : मीनाक्षी दत्ता मो. 9163372683

बेहतर लेखन - बेहतर वाग्य  
 पाठकों की वापसी का अभियान !

लेखकों से अनुरोध है कि वे छोटी रचनाएँ भेजें जो अप्रसारित हों।

प्रकाशक और मुद्रक कुसुम खेमानी द्वारा भारतीय भाषा परिषद 36ए शेक्सपियर सरणी, कोलकाता 17 के लिए प्रकाशित  
 और मुद्रित। सत्ययुग एम्प्लाइज को-ऑपरेटिव इण्डस्ट्रीयल सोसाइटी लि., 13 प्रफुल्ल सरकार स्ट्रीट, कोलकाता 700072  
 द्वारा मुद्रित। संपादक : शंभुनाथ